पंजीयन संख्या : 68939/98

ज्ञान तत्व

सत्यता एवं निष्पक्षता का निर्भीक पाक्षिक

MAY 2025

अंक - 11

472

किसान आत्महत्या की समीक्षा 3

"...कृषि उत्पादनों पर टैक्स वसूला जाता है और वह टैक्स वसूल कर उपभोक्ताओं को सस्ता अनाज बांटने में खर्च किया जाता है..."

कृषि और उद्योग एक दूसरे के पूरक हैं 4

खेती लाभ का व्यवसाय या हानि का 6

प्रकाशन की तिथि - 31-05-2025 पोस्ट की तिथि - 16-06-2025

सिंहावलोकन

10 क्या नरेंद्र मोदी तानाशाह हो सकते हैं

8 नई समाज व्यवस्था

12 भारत में नक्सलवाद

10 महिला आरक्षण

11 राजनैतिक चर्चा

13 ज़ूम चर्चा कार्यक्रम का सारांश

14 जीवन पथ (उपन्यास)

पत्र व्यवहार का पता

बजरंग लाल अग्रवाल पोस्ट बाक्स 15, रायपुर (छ.ग.) 492021

website : margdarshak.info

प्रकाशक, संपादक व स्वामी - बजरंगलाल

9617079344

mail : Support@margdarshak.info

ज्ञान केन्द्र विचार, समन्वय और परिवर्तन के तीर्थ

किसान आत्महत्या की समीक्षा

बजरंग मुनि
प्रधान संपादक

किसी कार्य के परिणाम की कल्पना और यथार्थ के बीच जब असीमित दूरी का अनुभव होता है, तब कभी-कभी व्यक्ति आत्महत्या की ओर अग्रसर होता है। इसका अर्थ हुआ कि यदि परिणाम की कल्पना असंभव की सीमा तक कर ली गई अथवा किसी दुर्घटनावश परिणाम अप्रत्याशित हुए, तभी व्यक्ति को असीमित दुख होता है। ऐसा व्यक्ति ही कभी-कभी आत्महत्या कर लेता है। आत्महत्या करने वालों में सभी प्रकार के लोग होते हैं। छात्र भी बड़ी संख्या में आत्महत्या करते हैं, तो महिलाएं अथवा व्यापारी भी। कभी-कभी तो राजा तक आत्महत्या करते पाए जाते हैं। यह अलग बात है कि किसानों की आत्महत्या कुछ अधिक प्रचारित हुई।

किसान तीन प्रकार के होते हैं-

(1) जो अपनी भूमि में स्वयं खेती करते हैं।

(2) जो अपनी भूमि में मजदूरों से खेती कराते हैं।

(3) जो उन्नत तकनीक तथा कृत्रिम ऊर्जा के सहारे खेती करते हैं।

ऐसे उन्नत किसानों को ही फार्महाउस वाला किसान कहा जाता है। जिन किसानों ने आत्महत्या की है, उनमें फार्महाउस वाला उन्नत किसान लगभग नहीं है। जो किसान अपनी जमीन पर स्वयं खेती करता है और अपने उपयोग में लाता है, वह भी आत्महत्या नहीं करता। भारत में जिन लाखों किसानों ने आत्महत्या की है, वे लगभग बीच वाले किसान थे, जो छोटी जोत के मालिक थे और मजदूरों के माध्यम से खेती कराते रहे हैं। विचारणीय प्रश्न यह है कि किसी मजदूर ने आत्महत्या नहीं की। दूसरा विचारणीय प्रश्न यह भी है कि यदि खेती घाटे का सौदा है, तो देश में लगातार कृषि उत्पादन बढ़ रहा है। ये दोनों प्रश्न सही होते हुए भी यह प्रश्न सच है कि बड़ी मात्रा में बीच वाले किसान आत्महत्या कर रहे हैं। इसके कई कारण हैं -

(1) स्वतंत्रता के बाद श्रम का मूल्य बढ़ा और कृषि उत्पादन का मूल्य घटा। भारत में स्वतंत्रता के बाद मुद्रा का अवमूल्यन 200 गुना हुआ है। इसका अर्थ है कि यदि सन 47 में किसी वस्तु का मूल्य 1 रु था और आज 200 रु है, तो वह समतुल्य है। यदि हम श्रम मूल्य का आकलन करें, तो वह वर्तमान में 200 की तुलना में लगभग 300 हो गया है। दूसरी ओर, यदि हम अनाज के मूल्य का आकलन करें, तो वह दालों को छोड़कर लगभग 100 गुना ही बढ़ा है। इसका अर्थ हुआ कि श्रम मूल्य की तुलना में कृषि उत्पादन का मूल्य एक तिहाई ही रह गया है। ऊपर से महंगाई का झूठा हल्ला उस बेचारे उत्पादक को और भी अधिक परेशान किए रहता है। वैसे भी हम देख सकते हैं कि यदि स्वतंत्रता के समय एक मजदूर को एक दिन का डेढ़ किलो अनाज देते थे, तो आज 12 किलो दे रहे हैं। इसमें कुछ बढ़ती हुई विकास दर का भी योगदान है, किंतु किसान पूर्व की तुलना में आठ गुना अधिक अनाज श्रमिक को देता है। साधारण किसान किसी तरह सामान्य रूप से तो अपना खर्च चलाता है, किंतु आकस्मिक विपत्ति के समय उसका धैर्य टूट जाता है और वह भावनाओं में बहकर आत्महत्या कर लेता है।

(2) किसान के उत्पादन का मूल्य बढ़ नहीं पाता क्योंकि अपेक्षाकृत सस्ती कृत्रिम ऊर्जा और तकनीक से खेती करने वालों के साथ वह बीच वाला किसान प्रतिस्पर्धा नहीं कर पाता। उन्नत तकनीक से उत्पादित कृषि उत्पादन सम्पूर्ण कृषि उत्पादन का मूल्य बढ़ने ही नहीं देता। साथ ही राजनीतिक व्यवस्था पर उपभोक्ताओं का प्रभाव अधिक रहता है और वे बाजार तथा राजनीति पर पूरी तरह हावी रहते हैं, तो उपभोक्ता किसी भी रूप में किसी उत्पादन का मूल्य संतुलित होने ही नहीं देते। भले ही उत्पादक आत्महत्या ही क्यों न कर ले।

(3) किसानों का भावनात्मक रूप से जमीन के साथ मोह पैदा कर दिया जाता है, जिससे किसान अपनी जमीन बेचकर या खाली छोड़कर किसी अन्य दिशा में नहीं जा पाता। सामाजिक तथा राजनीतिक वातावरण किसानों की झूठी प्रशंसा करके उन्हें जमीन के साथ जोड़े रखना चाहता है। यदाकदा राजनीतिक व्यवस्था भीख के बतौर कुछ सुविधाएं देकर भी ऐसे मजबूर किसानों को खेती के प्रति लगाव बनाए रखती है। इस तरह तीन ऐसे कारण हैं जो किसानों की आत्महत्या के कारण के लिए माने जाते हैं। स्पष्ट है कि अन्य लोगों की आत्महत्याएं भले ही भावनात्मक कारणों से होती हों, किंतु किसानों की आत्महत्या में कोई भावनात्मक कारण न होकर मजदूरी ही एकमात्र कारण होती है।

यदि हम समाधान पर विचार करें तो समाधान भी साधारण बात नहीं है। कृषि उत्पादन का मूल्य बढ़ा दिया जाए तब बड़े किसान ही बहुत ज्यादा लाभान्वित होंगे। यदि खाद, बीज, बिजली, पानी सस्ता कर दिया जाए तब भी बड़े किसान ही लाभान्वित होंगे। इन आत्महत्या करने वालों के हिस्से में कुछ नहीं आएगा। श्रम का मूल्य कम नहीं किया जा सकता क्योंकि श्रम, बुद्धि और धन की तुलना में बहुत ज्यादा असमानता हो गई है और श्रम का मूल्य और अधिक बढ़ना चाहिए। किसानों की आत्महत्या रोकने के लिए श्रम मूल्य वृद्धि को नहीं रोका जा सकता। मैं स्पष्ट कर दूं कि वर्तमान समय में किसान आत्महत्या के नाम पर जो भी किसान आंदोलन हो रहे हैं, वे बड़े किसानों के नेतृत्व में हो रहे हैं। ये किसान खाद, बिजली, पानी का मूल्य घटाने की बात करते हैं। ये किसान श्रम मूल्य वृद्धि के भी विरुद्ध वातावरण बनाते हैं,

"...कृषि उत्पादनों पर टैक्स वसूला जाता है और वह टैक्स वसूल कर उपभोक्ताओं को सस्ता अनाज बांटने में खर्च किया जाता है..."

किन्तु ये बड़े किसान खेती की दुर्दशा के मूल कारण को नहीं खोज पाते।

मैंने राष्ट्रीय और सामाजिक भावनाओं में बहकर व्यापार छोड़ दिया और जनहित में खेती का व्यापार करने लगा। 30 वर्षों तक पूरा परिश्रम करने के बाद भी मेरी स्थिति इतनी खराब हुई कि मेरे समक्ष आत्महत्या के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं था। मैंने सन 95 में हार मानकर खेती छोड़ दी। मैं स्पष्ट कर दूं कि खेती छोड़कर मेरे परिवार ने बहुत अच्छा किया। मुझे पूरा अनुभव है कि खेती घाटे का व्यवसाय है यदि उन्नत तकनीक से न किया जाए तो। इसका अर्थ हुआ कि जिस तरह सम्पूर्ण भारत में लघु उद्योग मरणासन्न है, छोटे व्यापारी परेशान हैं, छोटे उद्योगपति परेशान हैं, उसी तरह आज छोटे किसान भी आत्महत्या कर रहे हैं क्योंकि सम्पूर्ण भारत में सब प्रकार के कार्यों का केंद्रीकरण हो रहा है और इस केंद्रीकरण की चपेट में छोटे किसान भी हैं। इसका अर्थ हुआ कि समस्या कहीं और है और समाधान कहीं और। किसानों की आत्महत्या रोकने का एक ही ईमानदार समाधान हो सकता है कि कृत्रिम ऊर्जा का मूल्य इतना अधिक बढ़ा दिया जाए कि उन्नत किसान, मध्यम किसान और छोटे किसान एक दूसरे के साथ खुली प्रतिस्पर्धा कर सकें या कम से कम इतना अवश्य हो कि तकनीक वंचित का तथा श्रम का शोषण न कर सके। मैं जानता हूं कि इस मूल्य वृद्धि का आयात-निर्यात पर दुष्प्रभाव हो सकता है, किन्तु उसका समाधान कठिन नहीं। कितनी दुख की बात है कि स्वतंत्रता के बाद से लेकर आज तक लगभग सभी कृषि उत्पादनों पर टैक्स वसूला जाता है और वह टैक्स वसूल कर उपभोक्ताओं को सस्ता अनाज बांटने में खर्च किया जाता है। कुछ कृषि उत्पादों पर तो आज तक टैक्स माफ नहीं हुआ है।

हमारी राजनीतिक व्यवस्था गरीब, ग्रामीण, श्रमजीवी, छोटे किसान के विषय में भाषण तो बहुत देती है, किन्तु इन चारों के उत्पादनों और उपभोग की वस्तुओं पर भारी कर लगाकर शिक्षा, स्वास्थ्य, सस्ता आवागमन आदि पर खर्च करती है। यदि ऐसी विपरीत परिस्थितियों में छोटा किसान आत्महत्या करता है, तो विचार करिए कि दोष किसान का है या समाज का है या हमारी राजनीतिक व्यवस्था का? ग्रामीण अर्थव्यवस्था को चौपट करके शहरी अर्थव्यवस्था का प्रोत्साहन इससे अतिरिक्त अन्य कोई परिणाम नहीं दे सकता। मैं चाहता हूं कि किसान आत्महत्या पर गंभीरता से विचार करके इसका समाधान खोजा जाना चाहिए।

कृषि और उद्योग एक दूसरे के पूरक हैं

भारतीय राजनेताओं और पश्चिम के राजनेताओं में एक बहुत बड़ा फर्क यह है कि पश्चिमी राजनीतिज्ञ बहुत सोच-समझकर कानून बनाते हैं। और भारत के राज्य नेताओं को कानून बनाने में मजा आता है। पश्चिमी संसद अपने एक सत्र में जितने नए कानून बनाती है, भारतीय संसद उतने ही समय में उनसे कई गुणा अधिक कानून पास कर देती है। कई सौ वर्षों की गुलामी के बाद इन्हें कानून बनाने का अधिकार प्राप्त हुआ। अधिकार शौक में बदल गया और जब हमारे नेता संसद और विधानसभाओं में बैठते हैं तो उन्हें तानाशाह से कम समझते ही नहीं। परिणाम यह होता है कि उनकी आधी-अधूरी सोच ही कानून का स्वरूप ग्रहण कर लेती है और देश ऐसे-ऐसे अनावश्यक कानूनों को लंबे समय तक झेलता रहता है। यह शौक कोई वर्तमान राज्य नेताओं में पैदा हुआ हो ऐसा नहीं है। स्वतंत्रता के तत्काल बाद ही यह शौक पैदा हो गया था जब हमारे नेताओं ने किरायेदारों के पक्ष में कानून बनाया। कानून बनाने वालों में स्वयं को समाजवादी सिद्ध करने की होड़ लगी हुई थी। कानून बनाते समय यह नहीं सोचा गया कि यदि भविष्य में किराए के मकान बनना बंद हो गए, तब क्या करना होगा। परिणाम आज हम भुगत रहे हैं। इसी तरह अम्बेडकर जी ने हिंदू कोड बिल बनाने की जल्दबाजी की। इस कोड बिल पर समाज में स्वतंत्र बहस होने ही नहीं दी गई। अम्बेडकर जी और नेहरू जी ने स्वतंत्र बहस न कराकर बिल के पक्ष में एकतरफा प्रचार कराया। इस एक पक्षीय प्रचार कराने में सरकारी खजाने तक का दुरुपयोग हुआ, किन्तु आज तक कोई सवाल नहीं उठ सका कि कानून बनाने में इतनी जल्दबाजी क्यों? संसद में जब कोड बिल पास होने में विलंब होने लगा तो अम्बेडकर जी ने नाराज होकर अपना इस्तीफा तक सौंप दिया क्योंकि वे तो उसे प्रतिष्ठा का प्रश्न बना चुके थे।

आरक्षण का मामला भी वैसा ही था। देश के हर शुभ चिंतक यह समझते थे कि सवर्ण तथा अवर्ण के बीच की दूरी कम करने का अच्छा आधार आरक्षण नहीं है। जब तक आदिवासियों, अवर्णों और पिछड़ों की आर्थिक स्थिति नहीं सुधरती, तब तक यह दूरी कम नहीं हो सकती। आर्थिक स्थिति सुधर सकती है श्रम की मांग और मूल्य बढ़ने से। लेकिन हमारे नेताओं को तो संसद में अपना गुट मजबूत करना था। इन्होंने धड़ाधड़ संसद तथा नौकरियों में आरक्षण पास कर दिया, जो आज धीरे-धीरे हमारी व्यवस्था के लिए नासूर का रूप ग्रहण कर चुका है। पहले शासक और शासित की जो दूरी थी, वह धीरे-धीरे बढ़ती चली गई क्योंकि पहले शासक पक्ष में सवर्णों की बहुतायत होने से अलग रूप था। अब तो शासक पक्ष में आदिवासी हरिजन भी सवर्णों के साथ घुल-मिल गए हैं। इसलिये अब बोलने वाला कौन है?

यदि हम पश्चिमी की कार्य प्रणाली की तुलना करें तो उन लोगों ने अपने-अपने देशों में जो संविधान बनाए हैं, उनमें शायद ही कभी संशोधन की जरूरत पड़ती हो। यदि संविधान में संशोधन भी करना हो, तो सम्पूर्ण समाज में पक्ष-विपक्ष के बीच बहस छिड़ती है। यदि आवश्यक हो, तो जनमत संग्रह भी होता है। तब बहुत विचार करके संविधान संशोधन होता है। अभी-अभी 2009 के नवंबर माह में स्विट्ज़रलैंड में बहस छिड़ गई कि मुस्लिम मीनारों के ऊपर मीनार बनाना उचित है या नहीं। लंबी बहस चली और सर्वसम्मति नहीं बनी। तब पूरे स्विट्ज़रलैंड में जनमत संग्रह हुआ, जिसमें सरकारी पक्ष हार गया और जनता ने विरोध में मत दे दिया। यहां भारत में तो गाजर-मूली की तरह कानून बन जाते हैं। मैं अनेक कानूनों को जानता हूं जो आम लोग नहीं जानते क्योंकि वे कानून पूरी तरह अनावश्यक तथा अव्यावहारिक होते हुए भी आज तक लागू हैं।

हमारे छत्तीसगढ़ में रमन सिंह जी मुख्यमंत्री रहे हैं। शालीनता और समझदारी के मामले में औरों की अपेक्षा ठीक-ठाक माने जाते हैं। किन्तु जल्दी-जल्दी कानून बनाने का शौक इनको भी ज्यादा था। बैठे-ठाले कुछ न कुछ नया करने की जल्दबाजी में उल्टे-सीधे नियम बन जाना स्वाभाविक ही है। सरगुजा जिले में किसानों को गन्ने का उचित मूल्य मिले, इसलिये शक्कर कारखाना लगवा दिया। कारखाना सरकारी है, इसलिये घाटा भी होना ठीक नहीं। मिल के आस-पास के किसानों के गन्ना विक्रय तथा गुड़ पर प्रतिबंध का फरमान भी जारी कर दिया गया। तर्क दिया गया कि ऐसा फरमान तो पूरे देश भर की गन्ना मिलों के आस -पास लागू है। हुआ यह कि गन्ना फैक्ट्री समय पर चालू ही नहीं हो पाई। बेचारे किसानों का गन्ना खेतों में ही खड़े-खड़े सूख गया क्योंकि न वे किसी अन्य को बेच सकते थे, न ही गुड़ बना सकते थे। हमारे संवेदनशील मुख्यमंत्री जी ने ऐसे किसानों की कोई सुध ही नहीं ली क्योंकि सरगुजा कोई बिहार या यूपी तो है नहीं, जो हो-हल्ला होगा। बेचारे किसानों ने इस वर्ष बहुत कम मात्रा में गन्ने की खेती की। सरकारी अफसर अब किसानों की खुशामद कर रहे हैं कि वे गन्ने का रकबा बढ़ाएं। गन्ने की खुली बिक्री पर रोक का औचित्य क्या था? जब बाजार में शक्कर चालीस रुपये बिक रही है, तो किसानों को अपने गन्ने का मोलभाव करने पर रोक क्यों? क्योंकि यदि किसान गन्ना महंगा देगा, तो मिल मालिक से सरकार सस्ती चीनी लेवी के रूप में नहीं ले सकेगी। अपनी लेवी सस्ती रखने के लिए किसानों पर अमानवीय अत्याचार हुए और सरकार चुप रही।

इसी क्षेत्रीयता की कड़ी में रमन सिंह जी को एक नई बात सुझी थी कि छत्तीसगढ़ में कृषि भूमि के विक्रय पर कुछ इस प्रकार प्रतिबंध लगे कि कृषि भूमि बाहर के लोग तो बिल्कुल ही न खरीद सकें और यहां के लोग भी खरीदे तो खेती के अलावा अन्य कार्यों में उनका उपयोग न कर सकें। अन्य कार्य से उनका आशय उद्योग या निवास कॉलोनी या मकान बनाने का था। इस सोच को आगे बढ़ाने के लिए रमन सिंह जी ने वाकायदा महाराष्ट्र सरकार का अध्ययन भी कराया है। यह बात सच है कि धीरे-धीरे खेती का रकबा घट रहा है और मकान या उद्योगों में खेती की जमीन बदल रही है। इस प्रवृत्ति को रोकने की आवश्यकता से मैं सहमत हूं। किंतु मैं रमन सिंह के सुझाव को आत्मघाती प्रस्ताव मानता हूं। किसी कानून के द्वारा मजबूर करके खेती का रकबा बढ़ने की खुशफहमी तो हो सकती है किंतु रकबा नहीं बढ़ सकता। जिस तरह खेती का क्षेत्रफल बढ़ाना चाहिए, उसी तरह उद्योगों का भी क्षेत्र बढ़ना चाहिए और उसी तरह मकान भी बनाने चाहिए। तीनों काम आवश्यक हैं। एक का गला घोटकर दूसरे को प्रोत्साहन संभव नहीं है। छत्तीसगढ़ के विधानसभा भवन में न खेती होती है न उद्योग। वहां तो सिर्फ कानून के बीज बोए जाते हैं और अधिकारों की फसल काटी जाती है।

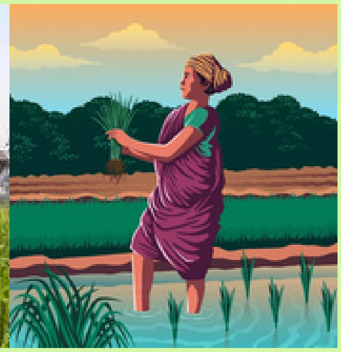

नेताओं को क्या पता कि खेती का रकबा घट क्यों रहा है। सच बात तो यह है कि खेती अलाभकारी होने से बड़ी मात्रा में खेती पड़त भूमि के रूप में रह जा रही है। मैंने स्वयं महाराष्ट्र में जाकर इस स्थिति को समझा है। जब छत्तीसगढ़ बना, उस समय कृषि उपज के क्रय-विक्रय पर मंडी टैक्स पचास पैसा प्रति सैकड़ा था। बिहार में नीतीश ने उस मंडी टैक्स को माफ कर दिया और जोगी रमन सिंह की सरकार ने उक्त कृषि उपज पर मंडी कर को चार गुना बढ़ाकर दो प्रतिशत कर दिया। किसानों को तोहफा दिया गया टैक्स बढ़ाकर। अन्य कई प्रकार के टैक्स तो अलग से हैं ही। कृषि उपज पर भारी-भरकम टैक्स लगाकर तथा प्रतिबंध लगाकर आप खेती को प्रोत्साहित नहीं कर सकते। पिछले चालीस-पचास वर्षों से आपने किसानों को खेती करने से निराश कर दिया है। किसान या तो नौकरी खोज रहा है या कोई अन्य उद्योग खोज रहा है किंतु खेती नहीं करना चाहता जब तक कि अच्छे साधन उपलब्ध न हों। आप कानून बनाकर यदि कृषि का क्षेत्र बढ़ाने की कोशिश करेंगे तो उससे कई गुना अधिक औद्योगिक क्षेत्र को नुकसान होगा। भारत सरकार ने पिछले दो वर्षों से कृषि उत्पाद मूल्य बढ़ाने पर आंशिक ध्यान दिया है। छत्तीसगढ़ सरकार ने भी अच्छी पहल की है। कुछ लाभ भी दिखने लगा है। किंतु उस लाभ के जल्दबाजी में उद्योगों और मकान बनाने पर कानूनी प्रतिबंध तो बहुत ही घातक होगा। एक ऐसे ही सिरफिरे अफसर ने बस्तर के अबूझमाड़ क्षेत्र में बाहरी लोगों के प्रवेश पर ही रोक लगा दी थी। तीस वर्षों बाद उस क्षेत्र का हाल देख रहे हैं कि वह क्षेत्र विकास से कितना पीछे रह गया। आज वह क्षेत्र पूरे भारत के लिए सिरदर्द बना हुआ है। छत्तीसगढ़ से बाहर के लोग छत्तीसगढ़ में उद्योग लगाने की भूमि न खरीद सकें, यह बात वैसे ही किसी सिरफिरे ने आपको समझाई होगी। महाराष्ट्र के किसानों की बाहरी लोगों को जमीन बेचने पर रोक का तो रमन सिंह जी अध्ययन करा रहे हैं, साथ ही यह अध्ययन कराएं कि महाराष्ट्र का ही किसान इतनी आत्महत्याएं क्यों कर रहा है? किसानों की भूमि विक्रय पर कई तरह के प्रतिबंधों से किसानों की भूमि के मूल्य कम हो गए। उनकी भूमि बिकी नहीं। फिर आत्महत्या क्यों? यदि कृषि भूमि का क्षेत्रफल घटने की रमन सिंह जी को इतनी चिंता है तो किसानों की भूमि का मूल्य कम न हो, इसकी चिंता कौन करेगा?

वर्तमान के कुछ वर्षों में छत्तीसगढ़ का औद्योगिक तीव्र विकास हुआ है। यहां कृषि भूमि के मूल्य भी तेजी से बढ़े हैं। मैं बिल्कुल ही नहीं समझ पा रहा कि एक ओर तो रमण सिंह जी बड़े-बड़े उद्योगपतियों को छत्तीसगढ़ लाने के लिए खुशामद कर रहे हैं, दूसरी ओर स्वयं अपने प्रयासों से जमीन खरीदकर लघु उद्योग लगाने वाले के रास्ते में रोड़े अटका रहे हैं। मैंने एक घटना सुनी थी कि भारतीय समाजशास्त्री कैसी बचकानी बातें करते हैं। घटना के अनुसार यह मांग उठी कि आदिवासियों का चौतरफा विकास तो खूब हो किंतु उनकी मूल संस्कृति पर कोई आंच न आए। ये दोनों ही बातें बिल्कुल विपरीत हैं किंतु दोनों ही प्रयास एक साथ चलते रहें। परिणाम हुआ कि न उस क्षेत्र का तीव्र विकास ही हुआ न संस्कृति का रक्षण ही हुआ। यदि विकास होगा तो रहन-सहन बदलना स्वाभाविक है। किंतु हम ऐसी-ऐसी विपरीत बातें करते हैं। रमन सिंह जी भी वैसा ही कर रहे हैं। छत्तीसगढ़ का औद्योगिक विकास और कृषि विकास दोनों एक साथ ही चल सकते हैं। यदि एक को दबाकर एक को उठाया गया तो दोनों से हाथ धोना पड़ सकता है। छत्तीसगढ़ में अभी दोनों दिशाओं में विकास के कारण रमन सिंह जी को जो पूरे भारत में वाहवाही मिली है, उस वाहवाही में अब धैर्य खोना ठीक नहीं। किसानों की भूमि विक्रय पर रोक लगाकर रमन सिंह जी किसानों का बहुत बड़ा अहित करने जा रहे हैं। किसानों को प्रोत्साहित करें। उन लोगों पर लगे कानूनी प्रतिबंध हटाएं। उनके उत्पादन के क्रय-विक्रय के बीच से टैक्स हटाएं। कृषि उत्पादन के विक्रय मूल्य को ऐसा रखें कि किसान स्वयं ही खेती की ओर झुकने लगे।

पिछड़ेपन का स्थायी समाधान है 'विकास' न कि शोषण से सुरक्षा। शोषण से सुरक्षा अस्थायी कदम हो सकता है किंतु समाधान नहीं। कृषि और उद्योग एक-दूसरे के पूरक हैं, प्रतिस्पर्धी नहीं। छत्तीसगढ़ में उद्योगों के विस्तार से प्राप्त आय को रमन सिंह जी ने कृषि सहायता पर खर्च भी किया है। अब पता नहीं वे क्यों दोनों को पृथक-पृथक देखने लगे हैं?

मैं समझता हूं कि सरकार अपने निर्णय पर फिर से विचार करेगी। और यदि नहीं करेगी तो छत्तीसगढ़ की औद्योगिक प्रगति को गंभीर क्षति पहुंचाएगी और अब तक मेरे जैसे अनेक विचारक रमन सिंह जी की एकपक्षीय प्रशंसा करते रहे हैं, उन्हें बाध्य होकर इस विषय पर उनकी चर्चा भी करनी पड़ेगी।

दस वर्ष पूर्व का लेख

देवेन्द्र शर्मा, कृषि विषेषज्ञ एवं पर्यावरणविद

विचार:- जरा इस पर विचार करें कि जब से आर्थिक सुधार लागू हुए हैं, इन वर्षो में किसी दफ्तर में काम करने वाले भृत्य की औसत मासिक बेसिक आय 7500 रु से बढकर 18 हजार रु हो गई है और केबिनेट सचिव की आय 80 हजार रु से बढकर 2.50 लाख रु हो गई है। हालांकि, सरकारी कर्मचारी की वेतनवृद्धि का आर्थिक उदारीकरण से कोई संबंध नहीं है, फिर भी मैं देखता हूँ कि सरकारी कर्मियों की वेतनवृद्धि को आर्थिक सुधार के शानदार नतीजे के रुप में दिखाया जाता है।

अब इसकी तुलना खेती से किसान को होने वाली आमदनी से करें। 2016 का आर्थिक सर्वेक्षण हमें बताता है कि किसान को अपनी कृषि गतिविधियों से होने वाली आय देश के 17 राज्यों में 20 हजार रु सालाना है। इसमें वह अनाज भी शामिल है, जो वह अपने परिवार के लिए निकालकर रख लेता है। दूसरे शब्दों में इन राज्यों में किसान की मासिक आय सिर्फ 1,666 रु है। राष्ट्रीय स्तर पर एन.एस.एस.ओ ने किसान की मासिक आय प्रति परिवार सिर्फ तीन हजार रु आकी है। निश्चित ही किसान की यह दयनीय स्थिति आर्थिक सुधारों का नतीजा है। सरल शब्दों में कहें तो आर्थिक उदारता या सुधार या बाजार अर्थव्यवस्था, आप जो भी नाम देना चाहें, ने बहुसंख्यक आबादी की अन्देखी की है। अन्य असंगठित क्षेत्रों की तरह कृषि भी इसकी सबसे बडी शिकार है।

जुलाई 1991 में डॉ. मनमोहन सिंह ने वित्त मंत्री के रूप में ऐतिहासिक भाषण देकर देश की अर्थव्यवस्था को खोल दिया था। मुझे याद है कि उन्होंने उद्योगों को नियंत्रण की बेड़ियों से मुक्त किया था और उन पर रियायतों की वर्षा सी कर दी थी और फिर अगले ही पैराग्राफ में माना था कि कृषि अब भी अर्थव्यवस्था का आधार है, किंतु कृषि राज्यों का विषय है। उन्होंने खेती के लिए आवश्यक प्रोत्साहन देने का मुद्दा राज्यों पर छोड़ दिया। यह पक्षपात साफ नजर आया। निश्चित ही उदारीकरण का यह अनसोचा असर नहीं था, बल्कि यह तो योजना का हिस्सा था। बाद में 1996 में विश्व बैंक ने भारत को निर्देश दिया कि वह अगले 20 वर्षों में 40 करोड़ लोगों को ग्रामीण से शहरी क्षेत्रों में स्थानांतरित करें। तर्क यह था कि भूमि बेशकीमती संपत्ति है और उसे अक्षम उत्पादों यानी किसानों की युवा पीढ़ी को खेती के अलावा कुछ आता नहीं था। विश्व बैंक ने सुझाव दिया कि भारत प्रशिक्षण संस्थानों का जाल बिछाए ताकि ये युवा औद्योगिक श्रमिक बन सकें। इसके साथ भूमि को किराए पर देने और उनके अधिग्रहण की शुरुआत होनी चाहिए। एक के बाद एक आने वाली सरकारें विश्व बैंक के नुस्खे पर आंख मूंदकर चल रही हैं। प्रधानमंत्री के पद पर रहते हुए मनमोहन सिंह ने बार-बार कहा था कि भारत में 70 फीसदी किसान अतिरिक्त हैं और उन्हें शहरी क्षेत्रों में ले जाना होगा। रिजर्व बैंक के गवर्नर रघुराम राजन कह चुके हैं कि बड़ा सुधार तो तब होगा जब भारत खेती करने वाली आबादी के बड़े हिस्से को शहरों में बसाएगा। हाल

ही में वित्त मंत्री अरुण जेटली ने खेती को दोष दिया है कि वह आबादी के बड़े हिस्से को जीवन आधार न देकर विषमता बढ़ाने की दोषी है। वे यह बताना भूल गए कि सरकारों ने जानबूझकर खेती को वित्तीय संसाधनों से वंचित रखकर कृषक समुदाय को गरीब बनाए रखा। बजट प्रावधानों में खेती को दी जाने वाली कम प्राथमिकता से यह स्पष्ट है। 11वीं योजना में खेती को पांच साल में बजट प्रावधान में सिर्फ 1 लाख करोड़ रुपये ही मिले। 12वीं योजना के पांच वर्षों में खेती को 1.5 लाख करोड़ रुपये मिले। संयोग से 52 फीसदी आबादी वाली खेती को मिलने वाला बजटीय समर्थन मनरेगा के वार्षिक प्रावधान से कम है। इस पर गेहूं और चावल का न्यूनतम समर्थन मूल्य लगभग स्थिर ही है, क्योंकि उपज नहीं जाती। आश्चर्य नहीं कि विकल्प मिलने पर 48 फीसदी किसान खेती छोड़ना चाहते हैं।

वास्तविकता तो यह है कि कृषि का ऐसा हश्र जान बूझकर किया गया है बल्कि सारे आर्थिक सुधारों को कृषि की दुर्गति से सहारा मिला है। यदि खेती को अधिक न्यूनतम समर्थन मूल्य के जरिये उसका हक दिया होता तो औधोगिक व व्यावसायिक क्षेत्रों को नतीजा भुगतना पड़ता, क्योंकि उंची खाद्य कीमतों के कारण मजदूरी अधिक देनी पड़ती, कृषि उपज बढ़ जाती। कृषि में मजदूरी बढ़ती तो शहरों की ओर पलायन कम हो जाता तथा आधारभूत ढांचे व निर्माण क्षेत्र के लिए सस्ता श्रम नहीं मिलता। स्वामीनाथन समिति की उत्पादन लागत पर 50 फीसदी मुनाफे की सिफारिश लागू करने के प्रति उदासिनता भी इसी चिंता का नतीजा है। सुप्रीम कोर्ट में सरकार ने लिखकर दिया है कि उंची कीमतें देने से बाजार अस्थिर हो जायगें। इसीलिए केन्द्रीय खाद्य व उपभोक्ता मंत्रालय ने राज्यों से कहा है कि वे समर्थन मूल्य के अलावा गेहूँ व चावल पर कोई बोनस न दें। इस तरह आर्थिक सुधारों की असली लागत तो ग्रामीण भारत चुका रहा है, जिसमें बहुसंख्यक किसान हैं। पहले सामाजिक आर्थिक सर्वेक्षण में यह विरोधाभास साफ पता चलता है। मानव विकास सूचकांक पर भारत 188 देशों की सूची में 130 वें स्थान पर हैं। जिन आर्थिक सुधारों की हम बात करते हैं उनमें देश की 51 फीसदी संपत्ति का फायदा 1 फीसदी धनी वर्ग को मिल रहा है। सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों को अर्थव्यवस्था को तेजी देने वाला माना जा रहा है, क्योंकि इससे उपभोक्ता सामान की मांग बढ़ने की अपेक्षा है। कल्पना करें कि खेती में आमदनी बढ़ने से भारतीय अर्थव्यवस्था को कितना अधिक बढ़ावा मिलेगा। सच तो यही है कि खेती में ही अर्थव्यवस्था को तेजी देने की क्षमता है।

दुर्भाग्य यह है कि जाने अनजाने कृषि को ही आर्थिक सुधारों के मौजूदा दौर को चलाए रखने के लिए बलिदान देने पर मजबूर किया जा रहा है। दूसरे शब्दों में 60 करो किसान विषमता पैदा करने वाले आर्थिक सुधारों की कीमत चुका रहे हैं।

उत्तरः- मैं नहीं जानता था कि भारत सरकार जानबूझकर किसी योजना के अंतर्गत शहरों की ओर ग्रामीण आबादी का पलायन कर रही है। वह योजना भी विश्व बैंक के निर्देशानुसार बनी है, यह बात भी मैं पहली बार ही सुन रहा हूं। कृषि के विरुद्ध यह योजना क्यों बनी तथा इसके गुण-दोष क्या हैं, यह विचार मंथन का विषय है, किंतु यह बात स्पष्ट होनी ही चाहिए कि आज हम सब जिस कृषक उत्पीड़न, शहरी आबादी वृद्धि, या अन्य कुछ समस्याओं को समस्या समझ रहे हैं, वे सब किसी परिणाम के अंतर्गत बनाई गई योजना के परिणाम हैं, समस्या नहीं। सरकारें इन्हें समस्या बताकर समाधान की जो बातें करती हैं, वे उनका ढोंग हैं।

आप कृषि एवं पर्यावरण के विशेषज्ञ हैं और मैं श्रमजीवियों की अधिक चिंता करता हूं। मैं मानता हूं कि कृषि संबंधी जो बातें आपने लिखी हैं, वे सही हैं, किंतु मैं यह समझता हूं कि कृषि की अपेक्षा श्रम की अधिक अवहेलना हुई है तथा श्रमजीवी अधिक परेशान हैं। बहुत प्राचीन समय में भी प्राथमिक स्तर पर वर्ण व्यवस्था में दो ही वर्ग थे- 1. श्रमजीवी 2. बुद्धिजीवी। श्रमजीवी वह व्यक्ति माना जाता था जो किसी बुद्धिजीवी को श्रम बेचता था। दूसरी ओर बुद्धिजीवी वह माना जाता था जो किसी का श्रम खरीदता था। बीच में भी कुछ लोग थे जो पूरी तरह अपने श्रम पर ही जीवित रहते थे। चाहे वे बौद्धिक श्रम करते हों या अपने श्रम में ही आंशिक बुद्धि का उपयोग करते हों, न वे श्रम खरीदते हों, न बेचते हों। ऐसे अनेक लोगों को श्रमजीवी या बुद्धिजीवी में अलग-अलग करना कठिन कार्य था।

वर्तमान समय में कृषि को एक इकाई मानकर निष्कर्ष निकालना ठीक नहीं क्योंकि आज भी दो विपरीत बातें एक साथ सत्य हैं- पहला, कृषि उत्पादन लगातार तेजी से बढ़ रहा है। मैं नहीं समझा कि दोनों एक साथ कैसे संभव हो रहा है। यदि किसान आत्महत्या कर रहा है, तो श्रमजीवी आत्महत्या क्यों नहीं कर रहा है। इसका अर्थ है कि भारत में छोटे किसानों की स्थिति श्रमजीवियों की अपेक्षा अधिक खराब है तथा बड़े किसानों की स्थिति बहुत अच्छी है। इसका अर्थ हुआ कि जिस तरह लघु उद्योग मरना सच है, छोटे व्यापारी परेशान हैं। उसी तरह छोटे किसान भी परेशान हैं और सरकार ने किसान योजना के अंतर्गत छोटे किसानों को श्रमजीवी बनने की ओर प्रेरित करने की योजना बनाई होगी। इन सब बातों के होते हुए भी मैं महसूस करता हूं कि कृषि उत्पादन को और अधिक लाभकारी मूल्य दिया जाना चाहिए था क्योंकि कृषि श्रम का अधिक समायोजन कर सकती है। इससे उत्पादन भी बढ़ेगा और श्रम की मांग भी बढ़ेगी।

मैं समाज को कृषि और उद्योग में विभाजित नहीं करना चाहता, बल्कि श्रमजीवी और बुद्धिजीवी के बीच विभाजित करना चाहता हूं। मेरा ऐसा मानना है कि कृत्रिम ऊर्जा सस्ती होना श्रमजीवियों के विरुद्ध बुद्धिजीवियों का षड्यंत्र है। कृत्रिम ऊर्जा को महंगा न करके आम कृषि उत्पादों पर भारी लगाना बहुत घातक है। यदि कृषि उत्पादों पर से सारे टैक्स हटा दिए जाएं तथा तदनुसार कृत्रिम ऊर्जा की भारी मूल्यवृद्धि कर दी जाए, तो लगभग सभी आर्थिक समस्याओं का समाधान संभव है। हमें उन बातों पर गंभीरता से विचार करना चाहिए जिनके आधार पर भारत सरकार ने विश्व बैंक की बात मानी और ऐसे कदम उठाए, जो आज हमारे समक्ष समस्या के रूप में खड़े हैं। मुझे तो संदेह होता है कि कहीं किसी विदेशी दबाव के कारण ही तो 70 वर्षों से भारत की सरकारें कृत्रिम ऊर्जा को महंगा न करके कृषि उत्पादों पर भारी कर लगाती हैं। यदि ऐसा कुछ है, तो यह गंभीर चिंता का विषय है और इस पर चर्चा होनी चाहिए।

खेती लाभ का व्यवसाय या हानि का

हम लंबे समय से देख रहे हैं कि नुकसान से प्रभावित होकर किसान आत्महत्या कर रहे हैं। सरकार उन्हें बड़े-बड़े पैकेज दे रही है। परंतु उनकी आत्महत्या कम नहीं हो रही। स्वतंत्रता के समय एक श्रमिक को दिनभर की मजदूरी एक से दो किलो तक अनाज मिलती थी। आज दस से पंद्रह किलो तक मिल रहा है। पिछले चार से छह महीने में शक्कर, अनाज सहित सभी उत्पादनों में बीस से तीस प्रतिशत तक मूल्यों में कमी आई है। मैं स्वयं तीस से चालीस वर्षों तक खेती की और लूट-पिट कर खेती करना बंद करके व्यवसाय की तरफ मेरा परिवार चला गया। अनुभव बताता है कि खेती लाभदायक व्यवसाय नहीं है। दूसरी ओर, स्वतंत्रता के बाद आज तक लगातार कृषि उत्पादन बढ़ रहा है। आबादी यदि चार गुना बढ़ी है, तो कृषि उत्पादन दस से पंद्रह गुना बढ़ गया है। भारत पहले के जमाने में खेती की वस्तुओं का आयात करता था। बड़ी मुश्किल से हमारे लोगों का पेट भर पाता था। आज भारत कृषि उत्पादन के निर्यात की स्थिति में है। दाल और तेल हम पहले की अपेक्षा कम मात्रा में मंगा रहे हैं। यदि कोई जमीन का मालिक स्वयं खेती न करे और किसी अन्य किसान को खेती करने के लिए वार्षिक किराए पर दे दे, तब भी उसे पर्याप्त मात्रा में किराया मिल जाता है। स्पष्ट है कि खेती में लाभ है। दोनों ही बातें सच हैं और एक-दूसरे के विपरीत हैं। मैंने इन दोनों बातों को समझने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि आधुनिक तरीके से खेती लाभदायक व्यवसाय है और परंपरागत तरीके की खेती नुकसान दे रही है। खेती करने वाला सामान्य किसान प्रतिवर्ष ठीक-ठाक रहता है, किंतु यदि किसी वर्ष उसे जोर का झटका लगा, तो संभल नहीं पाता। दूसरी ओर, बड़े किसान सब प्रकार के झटके सहन कर लेते हैं। इसलिये छोटी खेती भले ही अलाभकारी हो, किंतु बड़ी खेती अलाभकारी नहीं है। फिर भी मेरा अनुभव है कि सरकारी नौकरी और व्यापार की खेती से तुलना की जाए, तो अन्य दोनों की अपेक्षा खेती या तो नुकसानदायक होगी अथवा अपेक्षाकृत कम लाभदायक। मेरा मीडिया से निवेदन है कि वह महंगाई का हल्ला करके उत्पादकों के जले पर नमक छिड़कने का काम न करे, बल्कि यथार्थ को यथार्थ के समान ही प्रकट करे।

प्रश्नोत्तर

प्रश्न - आपने लिखा है कि कृषि उपज पर भी कर लगता है। मैंने पता किया, बताया गया कि किसानों पर किसी तरह का कर नहीं है। जो भी कर लिया जाता है, वह व्यापारियों से लिया जाता है। सच्चाई क्या है, इसे आप और स्पष्ट करें।

उत्तर- किसान अपनी जो भी फसल तैयार करता है, वह मंडी में व्यापारी को बेचता है। व्यापारी से उक्त माल उपभोक्ता खरीदता है। गांव का हर किसान कुछ वस्तुएं बेचता है और कुछ खरीदता है। गांव के नब्बे प्रतिशत लोग कुछ न कुछ पैदा करते हैं या खरीदते हैं। बहुत कम लोग ही हैं जो सिर्फ खरीदते ही हैं, किंतु पैदा कुछ नहीं करते। उपभोक्ता जिस मूल्य पर व्यापारी से माल खरीदता है, उसमें से सरकारी टैक्स काटकर ही तो व्यापारी उत्पादक से अनाज लेता है। कल्पना कीजिए कि उपभोक्ता मक्का दस रुपये किलो व्यापारी से खरीदता है और सरकार व्यापारी से पचास पैसा किलो टैक्स वसूल कर ले, तो व्यापारी किसानों को नौ रुपये पचास पैसा ही देगा। उसमें से ही वह अन्य अपना लाभ या खर्चे भी किसान से कम कर देगा। आप बताइए कि बिचौलिया कभी टैक्स देता है क्या? टैक्स तो उपभोक्ता और उत्पादक ही मिलकर दिया करते हैं। व्यापारी तो उक्त टैक्स में से कुछ न कुछ घपला भले ही कर दे, किंतु किसी भी माल पर लगने वाला कोई कर कभी भी व्यापारी नहीं देता। व्यापारी टैक्स चोरी के लिए ही चिल्लाता रहता है, अन्यथा टैक्स से व्यापारी को कोई हानि कभी नहीं होती।

कोई व्यापारी कुल मिलाकर जितना टैक्स इकट्ठा करके सरकार को देता है, उतना तो कुल मिलाकर उसका लाभ भी नहीं होता। कुछ वस्तुओं पर दस से बारह प्रतिशत तक कर है। यदि व्यापारी अपनी कुल बिक्री का पांच प्रतिशत भी सरकार को दे दे, तो व्यापारी का दिवाला पिट जाएगा। व्यापारी टैक्स देता है, यह असत्य है जो जानबूझकर फैलाया जाता है।

गांव का किसान शहर में माल बेचता है, तो शहर का व्यापारी उससे टैक्स काटकर किसान को पैसा देता है। किसान जब उक्त व्यापारी से कपड़ा, किराना या अन्य सामान खरीदता है, तब व्यापारी किसान से टैक्स जोड़कर पैसा लेता है। किसान ने सौ रुपये का अनाज बेचा, तो उसे पचानवे रुपये प्राप्त हुए और वह पचानवे रुपये का सामान खरीदा, तो उसे नब्बे रुपये का ही सामान प्राप्त हुआ, क्योंकि वह जो कुछ बेचता है, उस पर भी सरकार का टैक्स है और खरीदता है और उस पर भी। यहां तक कानून बनाए गए हैं कि किसान अपना अनाज उसी व्यापारी को बेच सकता है, जिसे खरीदने का सरकारी लाइसेंस प्राप्त हो। मंडी के बाहर किसान बेच नहीं सकता। मंडी के अंदर व्यापारी यदि एकजुट हो जाएं, तो किसान अपना माल बेचने को स्वतंत्र तो है नहीं। मैंने जो लिखा है, उस मुद्दे पर आप और पता करके लिखिएगा, तब बात और साफ हो जाएगी।

प्रश्न- आपने ज्ञान तत्व एक सौ पच्चासी छियासी में छत्तीसगढ़ के विषय में लिखा है कि रमन सिंह जी के शासन में किसान अपनी जमीन पर पैदा कृषि उपज तथा वन उपज बेचने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं। राज्य शासन को यह अधिकार है कि वह किसी भी कृषि उपज या वन उपज को शासन द्वारा घोषित मूल्य पर बेचने हेतु किसान को बाध्य कर सकता है, चाहे बाजार में उसका मूल्य अधिक भी क्यों न हो। हम लोगों ने तो आज तक यह बात नहीं सुनी, क्या छत्तीसगढ़ में ऐसा भी संभव है?

उत्तर- यह बात आज तक आपने इसलिये नहीं सुनी क्योंकि आप किसान नहीं हैं। जो अत्याचार किसानों के साथ छत्तीसगढ़ में हो रहा है, वह अकेले छत्तीसगढ़ में न होकर पूरे भारत में हो रहा है। छत्तीसगढ़ में ज्यादा दुख की बात यह है कि यहां भारतीय जनता पार्टी किसानों को अपना उत्पादन कहीं भी, किसी भी रेट पर, किसी भी मात्रा में बिक्री की छूट का आश्वासन देकर आई थी। आने के बाद उसने किसानों को सस्ती बिजली या धान का खरीद मूल्य बढ़ाने की पहल तो की, किंतु स्वतंत्र विक्रय नीति पर ध्यान नहीं दिया। सरकारी दलाल किसान नेताओं ने भी स्वतंत्रता की मांग न करके सुविधाओं की मांग की। सुविधा देने में सरकार को कोई दिक्कत नहीं होती क्योंकि सुविधा के नाम पर ही तो टैक्स बढ़ाने या प्रतिबंध लगाने की छूट मिलती है। किसानों पर इतने प्रतिबंध हैं कि सुनकर आपको आश्चर्य होगा। किसानों से लूट के लिए यह प्रतिबंध है कि किसान अपना उत्पादन सरकार द्वारा घोषित व्यापारी से बाहर के व्यापारी को नहीं बेच सकता। व्यापारी उक्त कृषि उपज जितने में उपभोक्ता को बेचेगा, उसमें से दो से चार प्रतिशत तक तो बिक्री कर सरकार जमा करा लेगी तथा दो प्रतिशत तक मंडी टैक्स जमा करा लेगी। व्यापारी का मुनाफा अलग से। शेष बचा हुआ पैसा किसान को मिलेगा। व्यापारी और सरकार मिलकर हमेशा फायदे में रहेंगे। इस टैक्स में से कुछ व्यापारी बचा लेगा तो कुछ अफसर। किसान को तो काटकर ही मिलेगा। किसान किसी अन्य को खुला बेचने हेतु स्वतंत्र नहीं है। ऐसा ही प्रतिबंध वनोपज पर भी हैं। अपने खेत में पैदा विभिन्न उत्पादों को वनोपज घोषित करके उसे मनमाने रेट पर खरीदना सभी सरकारों की नीति रही है। छत्तीसगढ़ सरकार भी उसी कांग्रेसी किसान शोषक नीति पर चल रही है। यहां तक कि अपने खेत में पैदा लकड़ी भी किसान स्वतंत्रता से नहीं बेच सकता। लाखों की अपनी खेत की लकड़ी कटाई के परमिशन में ही किसान की आधी जान निकल जाती है। परमिशन के बाद जो आधी जान बची, उसका तीस प्रतिशत सरकारी खजाने में जमा करवाना पड़ता है। बाकी बीस प्रतिशत किसान घर लाता है। हमारे नेताओं को शर्म नहीं आती कि वन आच्छादित सरगुजा जिले में मलेशिया की लकड़ी और उससे बने सामान आ रहे हैं, किंतु सरगुजा का किसान अपनी लकड़ी उस मूल्य पर नहीं बेच सकता जो मलेशिया वाले को मिलेगा। मैं पूरी तरह आश्वस्त हूं कि यदि सरकार किसानों की जमीन पर पैदा वनोपज से अपनी कमाई करना भी बंद कर दे, तो सरगुजा जिले में भारी मात्रा में पेड़ लगाना संभव है। मुझे तो लिखते हुए भी शर्म आती है कि अपनी जमीन पर पैदा आंवला पर भी सरकार को टैक्स चाहिए।

पिछले दिनों छत्तीसगढ़ सरकार ने सरगुजा जिले में गन्ना का गुड़ बनाने पर इसलिये रोक लगा दी कि यदि गन्ने का मूल्य बढ़ा, तो सरकारी चीनी मिल को या तो घाटा होगा या चीनी के मूल्य बढ़ाने होंगे। मूल्य बढ़ाने से सरकार को अपना चीनी खरीद मूल्य बढ़ाना होगा। सबका समाधान यह है कि किसानों ने गन्ना विक्रय पर ही रोक लगा दी जाए। कोई सरकार किसानों पर इतना भी अत्याचार कर सकती है, यह देखकर दुख होता है। सरकारी दलाल गन्ने का रेट बढ़ाने की मांग करते हैं और सरकार कुछ रेट बढ़ा देती है। कोई भी किसान नेता किसानों का उत्पादन किसी भी मात्रा में, किसी भी मूल्य पर कहीं भी बेचने की स्वतंत्रता की मांग नहीं करता। सब सुविधा की मांग करते हैं। सबको बिजली-पानी मुफ्त चाहिए। सबको ब्याज मुक्त कर्ज चाहिए। बाद में कर्ज माफी भी चाहिए, किंतु स्वतंत्रता नहीं चाहिए क्योंकि स्वतंत्रता का लाभ तो सबको हो जाएगा और सुविधा का अधिकतम हिस्सा तो चालाक लोगों की ही जेब में जाएगा। छत्तीसगढ़ सरकार भी इतना नीचे उतर सकती है, यह बात मुझे चुभ रही है।

मैं इतना स्पष्ट कर दूं कि अभी पूरे भारत में छत्तीसगढ़ सरकार किसानों के मामले में सर्वाधिक संवेदनशील है। इसने धान के रेट बहुत बढ़ा दिए। इसने साल बीज के भी रेट बढ़ाए। यदि भारत की अन्य सरकारें किसानों को लूटकर लूट के माल का तीस प्रतिशत किसानों पर खर्च करती हैं, तो छत्तीसगढ़ सरकार लूट के माल का पचास प्रतिशत खर्च कर देती है, किंतु छत्तीसगढ़ सरकार भी किसानों के किसी भी उत्पादन को टैक्स फ्री करने की दिशा में नहीं बढ़ रही।

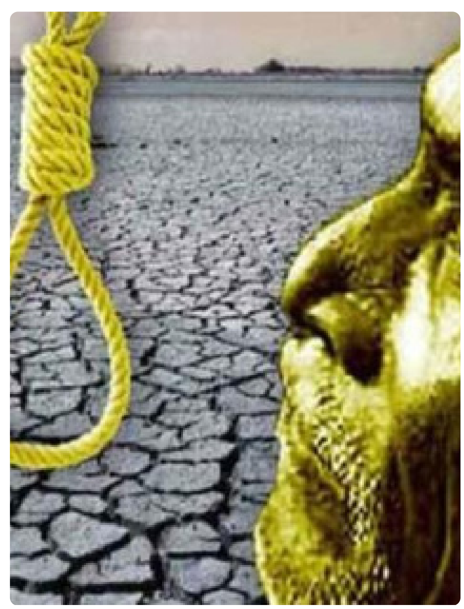

नयी समाज व्यवस्था :

1 हम नई समाज व्यवस्था में शराफत की सुरक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देंगे। यदि शराफत और व्यक्ति की स्वतंत्रता के बीच कोई टकराव होगा, तो हम शराफत को अधिक महत्व देंगे, स्वतंत्रता को नहीं, क्योंकि दुनिया में हजारों लाखों वर्षों से शराफत और अपराध के बीच ही संघर्ष चल रहा है और हमारा जन्म शराफत को मजबूत करने तथा अपराधों पर नियंत्रण के लिए ही हुआ है। हम हिंदुत्व का शराफत की सुरक्षा में उपयोग करेंगे। स्पष्ट है कि हम शराफत को हिंदुत्व की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण मानेंगे। यही कारण है कि मेरा लंबे समय तक संघ से इस विषय पर विवाद रहा कि मैं शराफत को हिंदुत्व से अधिक महत्व देता था और संघ हिंदुत्व को शराफत से अधिक। वर्तमान समय में संघ ठीक दिशा में चल रहा है। हम इतना समझते हैं कि हिंदुत्व शराफत की सुरक्षा में सबसे अधिक सक्रिय है, इसका यह अर्थ नहीं है कि शराफत से हिंदुत्व को अधिक महत्व देंगे। हम जाति, धर्म या अन्य किसी भी मामले में इस बात की बारीकी से खोज करेंगे कि उस माध्यम से शराफत कितनी मजबूत होती है। मैं इस बात को भी जानता हूं कि शराफत की सुरक्षा बुद्धिजीवी ही कर सकते हैं और शराफत को खतरा भी बुद्धिजीवियों से ही हो सकता है। ऐसी स्थिति में हम बुद्धिजीवियों को महत्व भी देंगे और सावधान भी रहेंगे। यही कारण है कि हम शराफत की सुरक्षा के लिए एक ऐसे बुद्धिजीवियों का ग्रुप तैयार कर रहे हैं जो शराफत को छोड़कर समझदार बन जाएं, क्योंकि समझदार लोग ही शराफत की सुरक्षा कर सकते हैं। मैं यह बात भी जानता हूं कि इन समझदार लोगों में से ही कुछ लोग चालाक निकल सकते हैं। उन चालाकों पर अंकुश लगाने के लिए हम एक सरकार बना रहे हैं। सरकार का काम यही होगा कि वह ऐसे चालाक लोगों पर नियंत्रण करें और हमारा काम यह होगा कि हम एक समझदार लोगों का ग्रुप बनाएं और इन समझदार लोगों का काम होगा कि वह समाज में शराफत को मजबूत करें।

2 सारी दुनिया में व्यवस्था तीन स्तर की है: व्यक्ति, राज्य और समाज। भारत में चार स्तर हैं: व्यक्ति, परिवार, राज्य और समाज। पूरी दुनिया में राज्य समाज व्यवस्था को समाप्त कर रहा है और धीरे-धीरे यह दिख रहा है कि राज्य व्यवस्था में समाज व्यवस्था पूरी तरह विलीन हो जाएगी। व्यवस्था व्यक्ति और राज्य के रूप में हो जाएगी। यह खतरा सारी दुनिया में दिख रहा है। आदर्श स्थिति में राज्य समाज का प्रबंधक होता है और व्यक्ति का शासक। वर्तमान दुनिया में राज्य व्यक्ति का प्रबंधक भी बनता जा रहा है और शासक भी, और समाज व्यवस्था को समाप्त कर रहा है। यह सारी दुनिया के लिए खतरा है। भारत में भी राज्य समाज व्यवस्था को समाप्त कर रहा है और परिवार व्यवस्था को भी समाप्त कर रहा है। इस तरह हम सबके सामने एक बहुत बड़ी समस्या यह आ गई है कि परिवार व्यवस्था और समाज व्यवस्था को किस तरह जिंदा रखा जाए, क्योंकि इन दोनों व्यवस्थाओं पर पूरा राज्य का खतरा है और इन दोनों व्यवस्थाओं को जिंदा रखना भी आवश्यक है। इसलिए हम लोग जी तोड़ प्रयास कर रहे हैं कि परिवार व्यवस्था और समाज व्यवस्था को जीवित रखा जाए। यह कार्य लगभग असंभव दिखता है, लेकिन कहीं न कहीं से शुरुआत तो करनी ही होगी, इसलिए हम लोगों ने यह प्रयास शुरू किया है। व्यवस्था परिवर्तन अभियान नाम से यह कार्य पूरे देश में शुरू किया जा रहा है। हमारे साथी इस योजना के अंतर्गत गांव-गांव में जाएंगे और वहां इस संबंध में संस्थागत ढांचा बनाएंगे।

3 हम लोगों ने इस विषय पर गंभीरता से विचार किया कि वर्तमान भारत में छुआछूत के लिए जो कानून बने हैं, उनका क्या औचित्य है। स्वतंत्रता के पहले छुआछूत थी, लेकिन गांधी, स्वामी दयानंद, श्री राम शर्मा तथा कुछ अन्य महापुरुषों के प्रयत्नों से छुआछूत भारत में लगभग समाप्त हो चुकी है। कुछ अंबेडकरवादी अवश्य ही छुआछूत के नाम पर टकराव पैदा करना चाहते हैं। अभी जो कुंभ का आयोजन हुआ, कुंभ में कहीं छुआछूत नहीं दिखी। अभी रामानुजगंज में पिछले साल एक बड़े यज्ञ का आयोजन हुआ, कहीं कोई छुआछूत नहीं थी। मेरे विचार से छुआछूत के नाम पर अंबेडकरवादियों द्वारा जिस तरह ब्लैकमेलिंग की जा रही है, उस ब्लैकमेलिंग का जवाब यही है कि छुआछूत के लिए बने हुए वर्तमान सारे कानून को समाप्त कर दिया जाए। छुआछूत इक्का-दुक्का गांव में अभी भी है, तो उस तरह की छुआछूत को कानून से रोकने की कोई जरूरत नहीं है। सब के समान अधिकार हैं। यदि किसी की स्वतंत्रता में कोई बाधा होगी, तो कानून रोक लेगा, अन्यथा कानून को हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। हम नई व्यवस्था में छुआछूत को समस्या स्वीकार नहीं करेंगे और इस संबंध में किसी प्रकार का कोई कानून नहीं बनाएंगे। कोई व्यक्ति किसी से अगर दूरी बनाकर रखना चाहता है, तो वह दूरी बनाकर रख सकता है, यह उसका मौलिक अधिकार है। यदि कोई किसी का बहिष्कार करना चाहता है, तो बहिष्कार कर सकता है, हम उसे नहीं रोक सकते। इसलिए छुआछूत को नई व्यवस्था में कोई मान्यता नहीं होगी। हम वर्तमान वातावरण में भारत को छुआछूत मुक्त समाज घोषित कर देंगे।

4 हम लोगों ने बहुत रिसर्च करके यह खोज की कि सरकार जिस प्रकार के अनेक कानून बनाकर सामाजिक समस्याओं का समाधान करना चाहती है, उनमें दो प्रकार की समस्याएं हैं: एक वे हैं जो लगभग समाप्त हो चुकी हैं, और दूसरी वे हैं जो लगातार बढ़ रही हैं। यह दोनों ही प्रकार की समस्याएं सामाजिक समस्याएं हैं, अपराध नहीं। पहले प्रकार की समस्याएं, जो लगभग समाप्त हो रही हैं, इनमें दहेज, छुआछूत, सती प्रथा, बढ़ती गरीबी, बहु विवाह, आदिवासी-हरिजन उत्पीड़न, महिला उत्पीड़न, और बाल विवाह शामिल हैं। इस प्रकार की अनेक समस्याएं हैं जो समाज में लगभग समाप्त हो गई हैं। लेकिन सरकारें इन समस्याओं को जिंदा मान रही हैं, अनावश्यक कानून बनाकर इन समस्याओं को भविष्य में भी जिंदा रखना चाहती हैं, जबकि समाज में अब इस प्रकार की कोई समस्या नहीं है। दूसरी तरफ, कुछ ऐसी समस्याएं हैं जो समाज में हैं, बढ़ रही हैं, और सरकार उन्हें रोक ही नहीं सकती। इन समस्याओं में नशा, भ्रष्टाचार, शोषण, व्यभिचार, जुआ, सट्टा, और वेश्यावृत्ति शामिल हैं। इस प्रकार की अनेक समस्याएं हैं जिन्हें सरकारें कानून बनाकर लगातार रोक रही हैं, लेकिन ये सामाजिक बुराइयां लगातार बढ़ती जा रही हैं। मेरे विचार से, इन दोनों प्रकार की बुराइयों से सरकार को अलग हो जाना चाहिए। पहले प्रकार की बुराइयां अपने आप समाप्त हो रही हैं, उन प्रकार की बुराइयों में सरकार को सारे कानून हटा लेने चाहिए। सरकार को अब कोई दखल नहीं देना चाहिए। दूसरे प्रकार की जो बुराइयां हैं, वे सरकार रोक ही नहीं सकती क्योंकि वे सामाजिक बुराइयां हैं, समाज ही उन्हें रोक सकता है। सरकार अनावश्यक शराब बंद करती है, वैश्यालय बंद करती है, जुआ रोकती है; इस प्रकार के कामों में सरकार को समय और शक्ति नहीं लगानी चाहिए क्योंकि ये सामाजिक बुराइयां हैं। मेरे विचार से, सरकारें गलत नीयत से इन दोनों प्रकार की सामाजिक बुराइयों को ठीक करना चाहती हैं, अन्यथा यह सरकार के काम नहीं है। हम नई सामाजिक व्यवस्था में इस प्रकार के सारे कानून समाप्त कर देंगे। जो बुराइयां समाप्त हो रही हैं, वे कानून हटा लिए जाएंगे; जो बुराइयां समाप्त नहीं हो सकती हैं, वे कानून भी हटा दिए जाएंगे, और हम राज्य का सामाजिक मामलों में हस्तक्षेप बहुत कम कर देंगे। भ्रष्टाचार नामक बुराई को सिर्फ सरकार कानून बनाकर जिंदा रखी हुई है, अन्यथा भ्रष्टाचार तो एक दिन में कम हो सकता है।

5 हमारी नई व्यवस्था में राजनीतिक व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था बिल्कुल अलग-अलग होगी। संवैधानिक व्यवस्था में समाज का कोई हस्तक्षेप नहीं होगा; संवैधानिक व्यवस्था पूरी तरह स्वतंत्रता पूर्वक काम करेगी। सिर्फ एक ही बंधन होगा कि वह संविधान का उल्लंघन नहीं कर सकती, बाकी उसे पूरी स्वतंत्रता होगी। सामाजिक व्यवस्था में संवैधानिक व्यवस्था कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकेगी। इस तरह, दोनों के कार्य क्षेत्र अलग-अलग होंगे। संवैधानिक व्यवस्था में व्यक्ति दो प्रकार के होंगे: एक सामाजिक और एक समाज विरोधी। यह वर्गीकरण व्यक्तियों में होगा; इसके अतिरिक्त किसी वर्ग को कोई मान्यता नहीं दी जाएगी। व्यक्ति और व्यक्ति के बीच में अंतर उसके कार्यों के आधार पर ही होगा। समाज विरोधियों पर नियंत्रण करना राज्य का एकमात्र कार्य होगा। सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति तीन प्रकार के माने जाएंगे। सामाजिक, असामाजिक और समाज विरोधी। असामाजिक लोगों को सामाजिक दिशा देने का कार्य सामाजिक व्यवस्था करेगी, उसके लिए हृदय परिवर्तन तथा सामाजिक बहिष्कार इन दोनों तरीकों का स्थिति अनुसार उपयोग किया जाएगा। लेकिन सामाजिक व्यवस्था किसी भी व्यक्ति को दंडित नहीं कर सकेगी क्योंकि किसी व्यक्ति के मौलिक अधिकारों के उल्लंघन का समाज को कोई अधिकार नहीं है। संवैधानिक व्यवस्था ही किसी व्यक्ति को दंड दे सकती है और वही मौलिक अधिकारों का अतिक्रमण कर सकती है। इस तरह, हम सामाजिक व्यवस्था और संवैधानिक व्यवस्था को पूरी तरह अलग-अलग स्वरूप देंगे; दोनों का किसी प्रकार का कोई घालमेल नहीं होगा, जैसा वर्तमान में हो रहा है। हमारे विचार से, वर्तमान समय में संवैधानिक व्यवस्था ने जिस तरह सामाजिक व्यवस्था का अतिक्रमण किया है, वह बहुत घातक है। हम सामाजिक व्यवस्था में राजनीतिक और संवैधानिक हस्तक्षेप को पूरी तरह समाप्त कर देंगे।

6 वर्तमान समय में एक सामाजिक बुराई बहुत विकराल रूप ले रही है। समाज में हम अच्छे और बुरे, इन दो के रूप में विभाजित कर रहे हैं। समाज में अच्छे लोगों की संख्या कम है, यह बात सही है, लेकिन दुर्भाग्य है कि ये अच्छे लोग पूरे समाज को बुरा मानते हैं, और बुरे लोग भी यही समझते हैं कि समाज में बुरे लोगों की संख्या बहुत अधिक है। इस विभाजन के कारण सारे अपराधियों को बचने का अवसर मिल जाता है। मैं इस संबंध में गंभीरता से विचार किया। वर्तमान समय में जो समाज में समस्याएं हैं, उन समस्याओं का एक प्रमुख कारण यह भी है। मैं व्यक्ति को प्रवृत्ति के आधार पर तीन तरह का मानता हूं। एक एक्सीडेंट, ट्रेन में कराहते हुए यात्रियों की सेवा करने वाले अच्छे लोग हैं, जो उन यात्रियों की सेवा न करके और तमाशा देख रहे हैं, ताश खेल रहे हैं, क्रिकेट देख रहे हैं, वे भी बुरे लोग नहीं हैं; यद्यपि वे अच्छे नहीं हैं, लेकिन जो उनका सामान उठा कर ले जा रहे हैं, वही लोग बुरे हैं। दुर्भाग्य से, हमारे कुछ लोग इन बीच वाले लोगों को भी बुरा मान लेते हैं, उनकी आलोचना शुरू कर देते हैं, और इसका यह परिणाम होता है कि ये बीच वाले लोग बुरे लोगों के साथ जुड़ जाते हैं। यह एक गंभीर समस्या है कि समाज को एक, दो, और तीन नंबर, तीन भागों में विभाजित करना चाहिए। जब बुरे लोगों की ताकत मजबूत हो, तब बीच वाले लोगों को अपने साथ जोड़कर रखना चाहिए, जैसा कि वर्तमान समाज की स्थिति है। आज रात हम लोग अपनी चर्चा में इस विषय पर भी विस्तार से चर्चा करेंगे, और मैं यह समझता हूं कि समाज की समस्याओं के समाधान में मेरा यह तर्क महत्वपूर्ण हो सकता है।

7 भारतीय लोकतंत्र में यद्यपि कहने को तो न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका को बिल्कुल स्वतंत्र और अलग-अलग माना जाता है, किंतु सच्चाई यह है कि न्यायपालिका इसका एक भाग है और कार्यपालिका तथा विधायिका, ये दोनों करीब-करीब मिलजुल कर चलते हैं। स्वतंत्रता के बाद आज तक यही बात देखने में आई है। सन 73 तक लगातार न्यायपालिका को प्रशासन ने दबा कर रखा, जब चाहा संविधान में मनमाने संशोधन कर दिए और न्यायपालिका को एक तरह से गुलाम बना लिया। सन 85 के बाद धीरे-धीरे न्यायपालिका शक्तिशाली होती चली गई और 95 से लेकर अब तक न्यायपालिका ने पूरी तरह विधायिका और कार्यपालिका को गुलाम बना लिया। लेकिन इस तरह की तानाशाही में कहीं-कहीं गलतियां भी होती ही हैं और इस बार न्यायपालिका इस प्रकार की गलती करके फंस गई है। अब न्यायपालिका से भारत के राष्ट्रपति ने कुछ प्रश्न पूछे हैं और उन प्रश्नों का कोई साफ उत्तर न्यायपालिका के पास नहीं है, क्योंकि न्यायपालिका अपने बढ़ते मनोबल के आधार पर राष्ट्रपति को आदेश देकर बहुत बड़ी भूल कर गई है और अब ऐसा लगता है कि ऊंट पहाड़ के नीचे आने के लिए मजबूर हो जाएगा। अर्थात न्यायपालिका को इस बात का उत्तर देना होगा कि न्यायपालिका संविधान से ऊपर नहीं है, जैसा न्यायपालिका अपने को समझने लगी है। राष्ट्रपति ने न्यायपालिका से जो सलाह के नाम पर स्पष्टीकरण मांगा है, उसके लिए हमारे राष्ट्रपति और अन्य प्रशासनिक इकाइयां बधाई की पात्र हैं। कहीं न कहीं न्यायपालिका से प्रश्न तो पूछा ही जाना चाहिए था, लेकिन अब तक ऐसी हिम्मत कोई सरकार नहीं कर पा रही थी, जो वर्तमान सरकार ने शुरुआत की है। अब प्रतीक्षा कीजिए कि भविष्य में क्या होता है। मुझे पूरी उम्मीद है कि न्यायपालिका इस मामले में सावधान रहेगी। न्यायपालिका को यह बात समझनी चाहिए कि अब मनमोहन सिंह की सरकार नहीं है, नरेंद्र मोदी की सरकार है। अब न्यायपालिका कपिल सिब्बल और प्रशांत भूषण जैसे बड़े बोले वकीलों के सहारे अपना बचाव नहीं कर पाएगी। अब तो उसे संविधान का सहारा लेना ही होगा।

8 यदि हम, अर्थात समाज, इस बात पर सोचें कि वर्तमान समय में दुनिया की सबसे बड़ी समस्या क्या है और इस समस्या पर विचार करते समय हम भारत को आधार बनाएं, तो मेरे विचार में वर्तमान समय में सबसे बड़ी समस्या यह है कि संविधान पर नियंत्रण के लिए न्यायपालिका और प्रशासन के बीच एक खुला युद्ध चल रहा है। वैसे तो इस तरह का टकराव सारी दुनिया में है, लेकिन हम भारत से शुरुआत कर रहे हैं। भारत में संविधान को सबसे पहले प्रशासन ने अपने कब्जे में कर लिया था। 26 वर्ष बाद, सन 73 में केशवानंद भारती प्रकरण से संविधान स्वतंत्र हुआ था, लेकिन सन 85 में पीएम भगवती ने संविधान को अपने कब्जे में करना शुरू किया और धीरे-धीरे संविधान पर न्यायपालिका का पूरा नियंत्रण हो गया। पहले प्रशासन पूरी तरह निर्लज बन गया था और बाद में न्यायपालिका निर्लज बन गई। पहले प्रशासनिक व्यवस्था संविधान का दुरुपयोग कर रही थी और अब न्यायपालिका करने लगी है। फिर से प्रशासनिक व्यवस्था ने संविधान को स्वतंत्र करने की शुरुआत की है, लेकिन यह भय बना हुआ है कि यदि संविधान न्यायपालिका से मुक्त होगा, तो फिर भविष्य में कहीं प्रशासनिक नियंत्रण में न चला जाए, क्योंकि दोनों ही संस्थाओं की नीयत खराब है। इस समस्या का सिर्फ एक समाधान है कि संविधान को स्वतंत्र कर दिया जाए और संविधान न्यायपालिका या प्रशासनिक व्यवस्था के हाथों से निकलकर एक संविधान सभा के नियंत्रण में आ जाए, जिस पर न प्रशासन का जोर चले, न न्यायपालिका का, बल्कि संविधान पर जनता का नियंत्रण हो। लोकतंत्र का यही स्वरूप आदर्श हो सकता है। इसलिए मैं यह चाहता हूं कि इस समय भारत की जनता एकजुट होकर एक ही आवाज लगाए कि हमें एक तंत्र-मुक्त संविधान चाहिए। हम नई सामाजिक व्यवस्था के अंतर्गत एक ऐसी संविधान सभा बनाएंगे, जो तंत्र के नियंत्रण से मुक्त होगी और संविधान सभा पर लोक, अर्थात समाज, अर्थात हमारा नियंत्रण होगा। संविधान में कोई संशोधन होगा, तो वह संविधान सभा और तंत्र मिलकर करेंगे। यदि दोनों के बीच कोई टकराव होगा, तो उसके लिए जनमत संग्रह होगा। मेरे विचार से वर्तमान सभी समस्याओं के समाधान की यहां से शुरुआत हो सकती है।

9 मैंने भारतीय संविधान मुक्ति पर आज एक पोस्ट लिखी थी। मैं जानता हूं कि इतने से दुनिया की सारी समस्याएं नहीं सुलझा सकेंगी। हमें कुछ और आगे सोचना पड़ेगा। इसका यह समाधान हो सकता है कि एक सारी दुनिया की संविधान सभा बने। एक ऐसी संविधान सभा जिसमें सात सौ पचास लोग हों, अर्थात एक करोड़ की आबादी पर एक संविधान सभा का सदस्य चुना जाए। इस संविधान सभा में हर व्यक्ति वोट देगा, चाहे वह कोई भी हो, कहीं का रहने वाला हो। देश की कोई सीमा नहीं होगी। ऐसे साढ़े सात सौ लोग मिलकर एक विश्व संविधान का प्रारूप तैयार करेंगे और उस संविधान के प्रारूप पर पूरी दुनिया का जनमत संग्रह होगा। उसके बाद वह संविधान लागू हो जाएगा और उस संविधान के अनुसार एक तंत्र बनेगा, जिसमें न्यायपालिका, विधायिका और कार्यपालिका होगी। ये तीनों संविधान का निर्णय मानने के लिए बाध्य होंगे और यदि संविधान में कोई संशोधन की जरूरत है, तो तंत्र और संविधान सभा दोनों मिलकर किसी प्रकार का संशोधन कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। यदि दोनों के बीच में मतभेद हो जाते हैं और अंतिम रूप से एकता नहीं बनती, तब जनमत संग्रह हो सकता है। इस तरह हम सारे विश्व की एक नई व्यवस्था बना सकते हैं। मेरे विचार से वर्तमान सभी समस्याओं के समाधान के लिए हमें इस वैश्विक संविधान पर सोचना चाहिए।

क्या नरेंद्र मोदी तानाशाह हो सकते हैं

1 किसी भी व्यक्ति के लिए यह बात निश्चित रूप से कहना कठिन है कि वह व्यक्ति शक्ति प्राप्त होने के बाद उसका दुरुपयोग नहीं करेगा। उस व्यक्ति के अब तक के व्यवहार के आधार पर सिर्फ मोटा-मोटा अंदाजा ही लगाया जा सकता है। बार-बार यह प्रश्न उठता है कि क्या शक्ति प्राप्त होने पर नरेंद्र मोदी तानाशाह नहीं बनेंगे? स्वतंत्रता के बाद अब तक भारत में जिन नेताओं को भी ऐसी शक्ति प्राप्त हुई, उनमें से राजीव गांधी को छोड़कर बाकी सब ने तानाशाह बनने का भरसक प्रयास किया। वर्तमान समय में भारतीय जनता पार्टी और साम्यवादियों को छोड़कर ऐसा कोई भी नेता नहीं है जो अपने दल में तानाशाह न हो। नरेंद्र मोदी की भूमिका भी लगातार अपनी पार्टी में उस दिशा में जा रही है, लेकिन पहली बार भारत में दो समान शक्ति रखने वाले लोग मिलकर सरकार चला रहे हैं, और वह हैं भारतीय जनता पार्टी के नरेंद्र मोदी और संघ के प्रमुख मोहन भागवत। यदि इन दोनों में से किसी एक की भी सहमति नहीं हुई, तो वह व्यक्ति किसी भी पद पर रहते हुए और कितनी भी शक्ति मिलने के बाद भी तानाशाह नहीं हो सकता, क्योंकि वर्तमान भारत में दोनों के बीच बराबर की राजनीतिक ताकत है, और तीसरी शक्ति के रूप में हम "मां" संस्थान के लोग दोनों शक्तियों को बैलेंस भी करते हैं। यह बात जगजाहिर है कि हम हमेशा पूरी तरह तानाशाही के विरुद्ध रहे हैं, यहां तक कि हम तो वर्तमान लोकतंत्र को लोकस्वराज की दिशा देने के लिए भी जन जागरण कर रहे हैं। इसीलिए मैं भारत की आम जनता को आश्वस्त करना चाहता हूं कि नरेंद्र मोदी के पास चाहे कितनी भी ताकत इकट्ठी हो जाए, भारत में तानाशाही का कोई खतरा नहीं है।

2 पिछले दिनों नरेंद्र मोदी और तानाशाही की संभावना पर एक पोस्ट लिखी थी। कई प्रश्न सामने आए। पहला प्रश्न यह था कि यदि मोहन भागवत और नरेंद्र मोदी एक साथ मिल जाएं, तो क्या भारत में तानाशाही नहीं आ जाएगी? दूसरा, कि नरेंद्र मोदी और मोहन भागवत पर इतना विश्वास कैसे किया जाए? और तीसरा, मां संस्थान क्या है जो मध्यस्थ की भूमिका में है? पहले प्रश्न का उत्तर यह है कि एक सिद्धांत के अनुसार, दो तानाशाह कभी एक साथ रह ही नहीं सकते। तानाशाही में यह विशेषता होती है कि तानाशाह दूसरे तानाशाह को बर्दाश्त कर ही नहीं सकता। संघ और नरेंद्र मोदी दोनों की प्रवृत्ति केंद्रीयकृत सत्ता की है, अर्थात तानाशाही के गुण हैं, इसलिए दोनों कभी एक साथ रह ही नहीं सकते। दूसरे प्रश्न का उत्तर यह है कि यदि नरेंद्र मोदी और मोहन भागवत पर विश्वास न किया जाए, तो आप लोग यह बताइए, कौन अधिक विश्वसनीय हो सकता है? क्या साम्यवादी विश्वसनीय हैं? क्या नेहरू परिवार का इतिहास विश्वसनीय है? क्या राहुल गांधी और प्रियंका गांधी लोकतांत्रिक हैं? क्या गांधीवादियों या सावरकरवादियों पर भरोसा किया जा सकता है? यदि नरेंद्र मोदी और मोहन भागवत नहीं हैं, तो उनकी जगह पर कौन ऐसा प्रशासक हो सकता है जिसकी लोकतंत्र के प्रति अधिक आस्था दिखती हो? मेरे विचार से ऐसा वर्तमान समय में कोई नहीं है, और इसलिए मजबूरी में मोहन भागवत और नरेंद्र मोदी ही अंतिम विकल्प हैं। तीसरा प्रश्न है मां संस्थान। मां संस्थान दुनिया में एकमात्र ऐसा संस्थान है जो किसी भी विचारधारा से प्रतिबद्ध न होकर स्वतंत्र विचारधारा का निर्धारण कर रहा है। मां संस्थान का पूरे देश भर के स्वतंत्र विचारकों से प्रत्यक्ष संपर्क है। फिर यह बात भी महत्वपूर्ण है कि मां संस्थान के अधिकांश निष्कर्ष वर्तमान सरकार तथा न्यायालय स्वीकार कर रहे हैं। ऐसे समय में मां संस्थान के अतिरिक्त और कौन सी ऐसी संस्था है जो निष्पक्ष हो, तटस्थ हो, विचार केंद्रित हो, और जो सरकारों को समय पर उचित सलाह भी दे सके और जिसकी समाज में भी मजबूत पकड़ हो? मेरे विचार से वर्तमान समय में दुनिया में कोई विचारकों का ऐसा समूह नहीं है जिस पर इतना विश्वास किया जा सके। इसलिए मैं मां संस्थान का उल्लेख किया था।

क्या सेक्स प्राकृतिक अधिकार है

1 हम सेक्स को मौलिक अधिकार मानते हैं। सेक्स की पूर्ति में राज्य या समाज को किसी भी प्रकार से बाधा नहीं पैदा करनी चाहिए क्योंकि सेक्स एक मौलिक अधिकार है और प्राकृतिक भूख है। हम सेक्स को संस्कारों द्वारा अनुशासित कर सकते हैं; इस कार्य में धर्म बहुत महत्वपूर्ण होता है, लेकिन सेक्स को किसी भी रूप में बलपूर्वक नहीं दबाया जा सकता। इसलिए सहमत सेक्स में आने वाली बाधाओं को दूर करने का कार्य समाज का था। दुर्भाग्य से सहमत सेक्स में बाधाएं पैदा करने में राज्य बहुत आगे आया। राज्य ने सेक्स में बाधाएं पैदा कीं और नासमझ धर्म गुरुओं ने इस संबंध में राज्य की मदद की। परिणाम यह हुआ कि सेक्स असंतुलित हो गया और इस असंतुलन का परिणाम अनेक प्रकार के अपराध हुए। अब आवश्यकता इस बात की है कि धर्म सेक्स के मामले में अपने विचारों में थोड़ा संशोधन करें और समाज इस बात की व्यवस्था करें कि सहमत सेक्स में किसी भी प्रकार की कोई बाधा न हो। धर्म और समाज दोनों को सबसे पहले राज्य को इस मामले से बाहर करना होगा। राज्य को किसी भी रूप में सेक्स के मामले में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए क्योंकि राज्य इस मामले को बहुत अधिक असंतुलित कर रहा है। जिस तरह राज्य विवाह की उम्र बढ़ा रहा है, वैश्यालय रोक रहा है, सेक्स के अप्राकृतिक माध्यमों को भी प्रतिबंधित कर रहा है, अन्य भी अनेक प्रकार के नए-नए कानून बना रहा है, ये कानून ही समाज में लगातार असंतुलन बढ़ा रहे हैं। राज्य को यह बात स्वीकार करनी चाहिए कि सेक्स एक मौलिक अधिकार है। सेक्स को सिर्फ अनुशासित किया जा सकता है, नियंत्रित नहीं। नई समाज व्यवस्था में हम इस बात का ध्यान रखेंगे कि यह असंतुलन पूरी तरह दूर हो जाए। समाज इस बात की चिंता करें कि सेक्स एक प्राकृतिक भूख है और सहमत सेक्स को किसी भी परिस्थिति में किसी भी तरीके से न रोका जा सकता है, न बाधा पैदा की जा सकती है। इसके लिए हम आप सब मिलकर अपने धर्म गुरुओं को इस बात के लिए सहमत करें कि वे किसी भी आधार पर इस मामले में राज्य की मदद न करें।

महिला आरक्षण

दिनांक 15 5 2025 को जूम चर्चा में आरक्षण, विशेषकर महिला आरक्षण पर चर्चा हुई। इसमें महिला आरक्षण के कई पहलुओं पर विचार मंथन किया गया। महिला आरक्षण का लाभ वैसी महिलाओं को मिल रहा है जो पहले से ही आगे हैं। 90% महिलाएं जो श्रमजीवी हैं, महिला आरक्षण का लाभ नहीं उठा पा रही हैं। इनमें से अधिकतर वह महिलाएं हैं जो आदिवासी और दलित वर्ग से आती हैं। असल में देखा जाए तो किसी भी तरह का आरक्षण बौद्धिकों का श्रमजीवियों के खिलाफ षड्यंत्र है। महिला आरक्षण का एक खराब पक्ष यह है कि इससे एक ही परिवार के पास शक्ति का केंद्रीकरण हो सकता है। हमारे देश में कई ऐसे परिवार हैं जिनमें स्त्री और पुरुष दोनों उच्च या महत्वपूर्ण पदों पर आसीन हैं। इससे इन परिवारों का बहुत ज्यादा शक्तिशाली हो जाना चिंता अगर हम वर्तमान में आरक्षण व्यवस्था को समाप्त करने की सोच रहे हैं, तो यह नामुमकिन है। हमें यह व्यवस्था खत्म करने से पहले कई बातों पर अमल करना होगा। हमें श्रम को अधिक महत्व देना होगा, महिलाओं को संपत्ति में अधिकार देना होगा, और समान नागरिक संहिता लागू करनी होगी। इसके अलावा, आरक्षण का लाभ ले चुके परिवारों को इससे बाहर करना होगा।

दिनांक 16 5 2025 को जूम चर्चा कार्यक्रम में पर्दा प्रथा, सती प्रथा तथा दहेज प्रथा पर चर्चा हुई। इन मुद्दों की ऐतिहासिकता और वर्तमान समय में प्रासंगिकता को लेकर विचार मंथन हुआ। पर्दा प्रथा सदियों से भारतीय समाज में प्रचलित रही है। इसकी उत्पत्ति के संबंध में कई तरह की बातें कही जाती हैं। मुस्लिम आक्रांताओं के द्वारा यहां की महिलाओं के साथ किया जाने वाला दुराचार था। दूसरा तर्क यह भी दिया जाता है कि लंबे समय तक मुस्लिम शासन रहने के कारण हिंदुओं में भी यह प्रथा आ गई।

अगर भारतीय परिवारों की बात की जाए, तो हम देख सकते हैं कि यौनिक शुचिता को बनाए रखने के लिए इस व्यवस्था को अपनाया गया। आधुनिक समाज में पर्दा प्रथा पूरी तरह से औचित्यहीन हो गई है।

सती प्रथा एक विवादित विषय है।

भारत में नक्सलवाद

राजनैतिक चर्चा

1- मेरे एक मित्र ने बताया कि राहुल गांधी चे ग्वेरा और फिदेल कास्त्रो के बहुत ज्यादा समर्थक हैं। दुनिया जानती है कि चे ग्वेरा, फिदेल कास्त्रो या ऐसे कुछ अन्य लोग हिंसक क्रांति पर विश्वास करते हैं। ऐसे लोगों को किसी भी रूप में न अहिंसा पर कोई भरोसा है न कानून का पालन करते हैं। किसी भी तरह हिंसा का सहारा लेकर सत्ता प्राप्त करना और सत्ता प्राप्त करने के बाद हिंसा के माध्यम से अपने को मजबूत करना इन सब की जीवन भर की नीति रही है। हमारे राहुल गांधी इस प्रकार के खूनी लोगों के समर्थक हैं और दुर्भाग्य है कि अपने नाम के आगे गांधी जोड़ते हैं। भारत में भी राहुल गांधी ने पिछले दो-तीन वर्षों में लगातार यह प्रयास किया कि नरेंद्र मोदी चीन से लड़ जाएं, नरेंद्र मोदी अमेरिका से टकरा जाएं, नरेंद्र मोदी पाकिस्तान, बांग्लादेश में दखल दे दें। राहुल गांधी लगातार यह बोलते रहे कि कहां गया नरेंद्र मोदी का 56 इंच का सीना। इसके बाद भी इतना कहने के बाद भी नरेंद्र मोदी पूरी तरह शांत रहे। उन्होंने हमेशा बुद्धि से काम लिया। राहुल गांधी ने तो यहां तक आरोप लगा दिया कि चीन ने भारत के बड़े भूभाग पर कब्जा कर लिया है और नरेंद्र मोदी अपने घर में दुबक गए हैं, उनकी हिम्मत नहीं हो रही है कि चीन के सामने बोल सकें। राहुल गांधी ने 50 बार इस बात की कोशिश की कि नरेंद्र मोदी किसी न किसी देश से लड़ जाएं। मुझे आश्चर्य होता है कि वही राहुल गांधी एक तरफ भारत सरकार को हिंसक टकराव की सलाह देते हैं, चे ग्वेरा और फिदेल कास्त्रो की प्रशंसा करते हैं, दूसरी तरफ वही राहुल गांधी भाईचारा की दुकान चलाते हैं। वही राहुल गांधी देश भर में घूम-घूम कर कहते हैं कि हमें मोहब्बत चाहिए, प्रेम चाहिए, टकराव नहीं। जो राहुल गांधी देश भर में यह कहते हैं कि मैं महिलाओं को कराटे सिखा रहा हूं, जो प्रियंका गांधी देश भर में घूम-घूम कर कहती हैं कि लड़की हूं, लड़ सकती हूं, वहीं राहुल और प्रियंका गांधी का नाम लेकर मोहब्बत का पैगाम भी देते रहते हैं। पता नहीं चलता कि इन दोनों के चेहरे किस प्रकार अलग-अलग दिखते हैं, दोनों क्या चाहते हैं। दोनों फिदेल कास्त्रो और चे ग्वेरा बनना चाहते हैं या दोनों गांधी के मार्ग पर चलना चाहते हैं। मैं तो अभी यही समझा कि दोनों पूरी तरह नाटकबाजी कर रहे हैं, किसी तरह कुर्सी पर बैठ जाएं। हो सकता है कि कुर्सी पर बैठते ही राहुल गांधी, गांधी को भी भूल जाएं और चे ग्वेरा को भी भूल जाएं। उन्हें सिर्फ याद रहे नेशनल हेराल्ड और देश की संपत्ति की लूट।

4- गाजापट्टी और कश्मीर की ताजा घटनाएं यह बात सिद्ध कर रही हैं कि दुनिया के मुस्लिम देश एक गंभीर उलझन में पड़े हुए हैं। उन्हें यह बात समझ में नहीं आ रही है कि उन्हें पीछे हटना चाहिए या मुकाबला करना चाहिए। गाजा में भी फिलिस्तीनियों के प्रमुख अब्बास ने यह महत्वपूर्ण बात कही कि हमास के कुत्तों ने हम सबके लिए जीना हराम कर दिया है। यह 100 लोगों को बंधक रखकर हजारों लोगों को मरवा रहे हैं, यह कौन सी मूर्खता है। आखिर मरने वाले फिलिस्तीनी हैं, मुसलमान हैं और यह बात निश्चित है कि बड़ी संख्या में और भी मारे ही जाएंगे। यह बात किसी अन्य मुसलमान ने नहीं कही, बल्कि फिलिस्तीनियों के राष्ट्रीय अध्यक्ष ने कही है। फंस गए राहुल गांधी, फंस गए अखिलेश यादव और ममता बनर्जी, यह दिन-रात फिलिस्तीन-फिलिस्तीन चिल्लाते रहते थे और फिलीस्तीन के लोग हमास के खिलाफ खड़े हैं। आज आप देख रहे हैं कि इजरायल लगातार उनकी जमीनों पर भी कब्जा कर रहा है, इन्हें लगातार मार भी रहा है, दुनिया के कोई मुस्लिम देश इनकी मदद के लिए नहीं आ रहा है। ठीक उसी तरह कश्मीर के मामले में भी पाकिस्तान दिन-रात चिल्ला रहा है, लेकिन दुनिया का कोई भी मुस्लिम देश पाकिस्तान की आवाज सुनने के लिए तैयार नहीं है। आखिर यह स्थिति क्यों पैदा हुई? क्योंकि मुसलमान ने इतना ज्यादा अत्याचार किया कि सारी दुनिया उनके खिलाफ खड़ी हो गई। अब हमें विचार करना है कि हम पीछे हटते हुए मुसलमान को दूर तक खदेड़े अथवा उन्हें भगाने का अवसर दें। मेरा अपना विचार है कि वर्तमान दुनिया के वातावरण में हमें उनका पीछा नहीं करना चाहिए। भारत के जो भी मुसलमान हिंदुओं के साथ शांतिपूर्वक रहना चाहते हैं, उन सबको अवसर दिया जाना चाहिए। हम उनसे सावधान रह सकते हैं, लेकिन सारे मुसलमान बुरे हैं, इस प्रकार खुलेआम बोलना मेरे विचार से किसी भी दृष्टि से ठीक नहीं है। मैं मानता हूं कि कुछ मुट्ठी भर कट्टरवादी हिंदुओं को इस तरह की भाषा बोलने में मजा आता है, क्योंकि अब नरेंद्र मोदी प्रधानमंत्री हैं और इस वक्त इस तरह उटपटांग बोलने में कोई खतरा नहीं है, लेकिन इस तरह की भाषा उचित नहीं है। मेरी फिर से सलाह है कि जिस तरह कट्टरपंथी मुसलमान की दुनिया में छीछालेदर हो रही है, उससे कट्टरपंथी हिंदुओं को सबक लेना चाहिए। भारत के हिंदुओं को गोडसे से नहीं, मोहन भागवत से शिक्षा लेनी चाहिए।

5- लगभग 17 वर्ष बीतने के बाद प्रज्ञा सिंह ठाकुर और पुरोहित का आतंकवादी होने का मामला न्यायालय में अंतिम चरण में है। 8 मई को निर्णय घोषित हो सकता है। यह बात स्पष्ट दिखती है कि न्यायालय से यह सब लोग निर्दोष मुक्त हो सकते हैं, क्योंकि जिन गवाहों पर न्यायालय में मुकदमा टिका हुआ था, उनमें से अनेक प्रमुख गवाहों ने अपनी गवाही बदल ली है। यह सरकार बदलने का ही प्रभाव दिख रहा है। इस मामले के मुख्य गवाह असीमानंद, जो पहले पुलिस के वायदा मुक्त गवाह थे, उन्होंने भी अपनी गवाही बदल ली है, जबकि वहीं प्रमुख गवाह थे। साफ है कि जब तक कांग्रेस सरकार रही, तब तक गवाह कुछ अलग भाषा बोलते रहे और सरकार बदलने के बाद गवाहों की भाषा बदल गई। क्या सच है, क्या झूठ है, यह पता नहीं है। हो सकता है कि इस मुकदमे में पिछली सरकार ने कुछ बढ़ा-चढ़ा कर आरोप लगा दिए हों और वर्तमान सरकार में कुछ बढ़ा-चढ़ा कर उन आरोपों को कमजोर कर दिया हो। सच्चाई चाहे जो भी हो, लेकिन यह बात तो अभी संदेह के घेरे में है कि इस मामले में चाहे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष ऐसे लोगों की भूमिका दिखती है, जो हिंदुत्व को आतंकवाद की दिशा में ले जाना चाहते थे। वह भूमिका कम है या ज्यादा और किन-किन लोगों की है, यह तो बात स्पष्ट नहीं है, लेकिन पूरी तरह निर्दोष कहना भी अभी जल्दबाजी होगी। इस विषय पर कुछ और लिखना मेरे लिए उचित नहीं है, लेकिन मैं इतना अवश्य मानता हूं कि प्रज्ञा सिंह ठाकुर या उनके कुछ अन्य साथियों ने जिस तरह गेरुआ वस्त्र पहनकर इस प्रकार की भाषा का उपयोग किया या उनके ऊपर जिस तरह के आरोप लगे, यह किसी संन्यासी के लिए उचित नहीं दिखते। इस प्रकार के वस्त्र और इस प्रकार के आरोप हिंदू धर्म को कलंकित करते हैं। प्रज्ञा सिंह ठाकुर का न्यायालय से निर्दोष मुक्त होना भी इस बात का प्रमाण नहीं है कि उनकी गतिविधियां एक संन्यासी के रूप में बहुत अच्छी रही हैं। हेमंत करकरे सरीखे ईमानदार अफसर ने इस प्रकरण की जांच की और जांच करके जो संदेह व्यक्त किया, उन संदेहों के आधार पर मैं यह कह सकता हूं कि हेमंत करकरे ने हिंदू धर्म को भविष्य के कलंक से बचा लिया, अन्यथा इस प्रकार की कलंकित विचारधारा कितना भी आगे तक जा सकती थी और हिंदू धर्म का भविष्य कलंक का होता, जो आज मुस्लिम आतंकवादियों का हाल दिख रहा है। मैं हेमंत करकरे को इस प्रयास के लिए बधाई देता हूं।

इतिहास की किताबों में यह पढ़ाया जाता है कि राजा राममोहन राय ने सती प्रथा को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। अगर देखा जाए, तो सती का मतलब होता है वैसी स्त्री जिसे अपने पति से अत्यंत अनुराग हो। प्राचीन काल में अपने पति की मृत्यु के बाद ऐसी स्त्रियां उसकी चिता के साथ जल जाती थीं। यहां एक बात ध्यान देनी होगी कि यह प्रथा स्वैच्छिक थी, बाध्यकारी नहीं। ब्रिटिश काल में एक षड्यंत्र के तहत इस परंपरा को सामाजिक बुराई का नाम देकर इस पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इसके पीछे इसका उद्देश्य हिंदुओं को बदनाम करना था। अगर हम वर्तमान समय की बात करें, तो यह व्यवस्था पूरी तरह से लुप्तप्राय हो गई है।

दहेज प्रथा का चलन हमारे समाज में प्राचीन काल से रहा है। पुराने जमाने में बेटी के विवाह के समय उसके माता-पिता उसे धन देते थे, जिसने कालांतर में परंपरा का रूप ले लिया। इस धन को स्त्री धन कहा जाता था। दहेज सामान्य रूप से देखा जाए, तो आपसी सहमति से ही होता है। लड़की वाले अपनी बेटी को अच्छे घर में भेजने की चाहत से दहेज की पेशकश करते हैं और उसे किसी भी कीमत पर देते हैं। बिहार और उत्तर प्रदेश में दहेज प्रथा का विकृत रूप आता है, जिसमें वर पक्ष वधू पक्ष पर हावी रहता है।

आजादी के बाद एक षड्यंत्र के तहत इसे एक सामाजिक बुराई के रूप में पेश कर कानून के दायरे में लाया गया। इसकी रोकथाम के लिए दहेज विरोधी कानून लाया गया। इस कानून का वर्तमान समय में बड़े पैमाने पर दुरुपयोग किया जा रहा है, जिससे हमारा समाज टूट रहा है। दहेज जैसी समस्या का निराकरण सामाजिक जागरूकता के द्वारा ही हो सकता है।

उपर्युक्त मुद्दों पर चर्चा के दौरान आम राय बनी कि राज्य को इन मामलों में हस्तक्षेप से दूर रहना चाहिए। यह सारे मामले परिवार और समाज के द्वारा ही तय और हल किए जा सकते हैं।

भारत में नक्सलवाद

भारत में नक्सलवाद खत्म हो रहा है। आज भी छत्तीसगढ़ में कई नक्सलवादी मारे गए हैं। नक्सलवाद खत्म हो रहा है, यह बात पिछले तीन-चार महीने से देश के प्रमुख कम्युनिस्टों के बयान से भी साफ होती जा रही है। कम्युनिस्ट दुनिया के सबसे चालाक व्यक्ति माने जाते हैं। कम्युनिस्टों में यह विशेषता है कि आतंकवादियों के प्रमुख समर्थक जब आतंकवादियों को खतरे में देखते हैं, तब वह तुरंत ही अपनी भाषा बदलकर सरकार से यह निवेदन करना शुरू कर देते हैं कि सरकार किस प्रकार के आतंकवादियों से इस तरह बात करें, जिस तरह नागालैंड या मणिपुर में समझौते किए जाते हैं। ये कम्युनिस्ट कभी नक्सलवादियों को खुलकर सलाह नहीं देते कि नक्सलवादी जान देने की तुलना में सरकार के समक्ष सरेंडर कर दें। तीन महीने पहले ही नक्सलवादियों के प्रमुख समर्थक सोनी सौरी, हिमांशु कुमार, नंदिनी सुंदर तथा कुछ अन्य लोगों ने सरकार से ऐसे ही निवेदन किया था। इन नेताओं के निवेदन के तत्काल बाद ही देश भर के छोटे-छोटे कम्युनिस्टों ने भी इसी तरह की मांगें उठाना शुरू कर दी थीं। मैं देख चुका हूं कि जब कश्मीर के मामले में आतंकवादियों का सफाया होने लगा, तब आतंकवादियों के समर्थक इसी तरह सुलह करने लगे थे। इन कम्युनिस्टों को यह पता होना चाहिए कि अब भारत में नेहरू खानदान की सरकार नहीं है, अब भारत में नरेंद्र मोदी की सरकार है और अब आतंकवादियों का पूरी तरह सफाया किया जाएगा। इन आतंकवादियों के मददगारों का भी जल्दी ही नंबर लगेगा। इनका सफाया फौरन न हो, लेकिन इन सब का तो जेल जाना निश्चित ही है। मेरा इन कम्युनिस्टों से भी यह निवेदन है कि वे नक्सलवादियों की चिंता छोड़कर अपनी खुद की सुरक्षा का रास्ता खोजें।

दिनांक 24-5-2025 को जूम चर्चा कार्यक्रम में नक्सलवाद पर चर्चा हुई। इस दौरान नक्सलवाद की उत्पत्ति, कारण, विस्तार और वर्तमान समय में सरकार द्वारा चलाए जा रहे अभियान पर बात की गई। नक्सलवाद की उत्पत्ति पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग जिले के नक्सलबाड़ी गांव में कानू सान्याल और चारु मजूमदार के द्वारा की गई। इन दोनों ने स्थानीय जमींदारों के खिलाफ लोगों को इकट्ठा कर हिंसा के माध्यम से अपनी बात मनवाई। धीरे-धीरे यह आंदोलन देश के अन्य भागों तक फैलता गया, जो एक गंभीर समस्या का रूप ले लिया।

अगर नक्सलवाद के कारणों की बात की जाए, तो इसके पीछे ईसाई मिशनरियों का छुपे तौर पर समर्थन, विभिन्न सरकारों का सहयोग, विदेशी ताकतों द्वारा फंडिंग महत्वपूर्ण कारक रहे हैं। इसके अलावा किसी क्षेत्र विशेष या समुदाय की उपेक्षा, विकासात्मक कार्यों का अभाव, निर्धनता और शिक्षा जैसे कारकों का भी योगदान रहा। वर्तमान समय में भारत सरकार सफलतापूर्वक नक्सलवाद का सफाया कर रही है। हाल ही में घटित ऑपरेशन ब्लैक फॉरेस्ट के तहत करेगुटा की पहाड़ियों पर नक्सलियों का मुख्यालय ध्वस्त कर दिया गया। डेढ़ करोड़ का इनामी बसव राजू को मार गिराया गया। नक्सलवाद अब भारत के कुछ ही जिलों तक सिमट कर रह गया है।

मेरा मानना है कि सरकार को किसी भी तरह की वार्ता उनके साथ नहीं करनी चाहिए।

नक्सलवाद का उद्देश्य हमेशा से सत्ता को हथियाना रहा है। इनको व्यवस्था से कुछ लेना-देना नहीं रहा। माओ की विचारधारा पर आधारित यह संगठन मानता है कि सत्ता बंदूक की गोली से निकलती है। यह सिद्धांत भारतीय लोकतांत्रिक प्रणाली के ठीक विपरीत है। गांधीवादी और वामपंथी सरकार द्वारा की जा रही कार्रवाई का विरोध कर रहे हैं, जो कि एकदम अनुचित है। हिंसा के माध्यम से समाज और राज्य को आतंकित करने वालों का एक ही इलाज है, बलपूर्वक उनका उन्मूलन। नक्सलवाद भारतीय संस्कृति, सभ्यता और भारतीयता के खिलाफ है, जिसे हर हाल में खत्म होना चाहिए।

आज नक्सलवाद अंतिम सांस गिन रहा है, लेकिन दुनिया में बहुत कम लोगों को पता है कि इसकी शुरुआत कहां से हुई। अनेक लोग ऐसा समझते हैं कि गांधीवादियों ने ही नक्सलवाद को बढ़ाया है, लेकिन आज मैं आपको यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि गांधीवादियों के माध्यम से ही आज नक्सलवाद समाप्त हो रहा है। इसकी सारी पटकथा रामानुजगंज जिले में बनी और उसका केंद्र रामानुजगंज शहर था। विनोबा जी नक्सलवाद का अहिंसक समाधान चाहते थे, साथ ही विनोबा जी तथा कुछ अन्य प्रमुख गांधीवादी ठाकुरदास जी, बंग सिद्धराज, ढढा, अमरनाथ भाई, दुर्गा प्रसाद आर्य तथा अन्य कई लोग व्यवस्था परिवर्तन के पक्षधर थे, लेकिन वह व्यवस्था परिवर्तन अहिंसक मार्ग से होना चाहिए, हिंसक मार्ग से नहीं। इस संबंध में 32 वर्ष पहले सबसे पहले रामानुजगंज में एक बैठक हुई। उस बैठक में प्रमुख गांधीवादियों के साथ कुछ संघ के कार्यकर्ता भी शामिल हुए, कुछ बिहार के प्रमुख नक्सलवादी भी शामिल हुए थे और सब के बीच में यह योजना बनी कि एक अहिंसक तरीके से व्यवस्था परिवर्तन का मार्ग प्रशस्त होना चाहिए। इस योजना में बिहार के नक्सलवादियों ने भी समर्थन दिया था। उस समय तक उत्तरी छत्तीसगढ़ में नक्सलवाद नहीं आया था और इसलिए रामानुजगंज जिले को इस अहिंसक व्यवस्था परिवर्तन का केंद्र चुना गया। एक तरफ हिंसक नक्सलवादी आंध्र से लेकर बिहार के नेपाल बॉर्डर तक एक सीधा गलियारा बनाना चाहते थे, जिसमें बस्तर से लेकर रामानुजगंज के भाग को जोड़ना था। बस्तर से आंध्र वाले नक्सलवादियों का लगातार विस्तार हो रहा था, लेकिन बिहार के नक्सलवादी रामानुजगंज के बॉर्डर पर आकर रुक गए थे। नक्सलवादियों का मार्गदर्शन और मदद उस समय गुप्त रूप से दिग्विजय सिंह द्वारा किया जा रहा था। जब हम लोगों ने अहिंसक व्यवस्था परिवर्तन की शुरुआत की, तब दिग्विजय सिंह जी ने मुझे नक्सलवादी घोषित कर दिया, गोली मारने का प्रयत्न किया और सारे अत्याचारों से मुझे गांधीवादियों ने बचाया। सन 2000 के आसपास आंध्र से आने वाले नक्सलवाद और बिहार से आने वाले नक्सलवादियों के बीच रामानुजगंज बॉर्डर पर खूनी संघर्ष हुआ और कई बिहार तरफ के नक्सलवादी उस संघर्ष में मारे गए, जिसकी कोलकाता में बैठकर समझौता बैठक हुई और हमारा रामानुजगंज जिले के आसपास का सारा क्षेत्र बिहार के नक्सलवादियों को दिया गया।

उसके बाद जब नक्सलवाद वास्तव में रामानुजगंज क्षेत्र में आता है, तो नक्सलवादियों ने इस पूरे जिले के आसपास पूरे क्षेत्र में अपनी सरकार बना ली, लेकिन जब नक्सलवादियों ने हिंसा शुरू की, लोगों को मारना शुरू किया, तब हम लोगों ने गांधीवादियों के साथ मिलकर नक्सलवादियों का विरोध किया और उन्हें समझाया कि आप अहिंसक मार्ग से चल सकते हैं, आप सिर्फ सरकार से लड़ सकते हैं, जनता से नहीं। आप जनता पर अत्याचार नहीं कर सकते, आप और बंदूक-पिस्टल का उपयोग नागरिकों पर नहीं करेंगे। जब उन लोगों ने यह शर्त स्वीकार कर ली, तब हम लोगों ने 2002 से लेकर 2005 तक सरकार से मिलकर इन हिंसक नक्सलवादियों को मरवा दिया। सबसे पहले आम जनता के समर्थन से भारत का पहला जिला रामानुजगंज बना, जहां से नक्सलवाद हार गया और समाप्त हो गया। यहीं से नक्सलवाद के समापन की पटकथा लिखी जाती है, जिसका परिणाम आज आप देख रहे हैं कि नक्सलवाद भारत से समाप्त हो रहा है। मैं उन गांधीवादी मित्रों को इस बात के लिए बधाई देना चाहता हूं कि जिन्होंने नक्सली मुक्त भारत बनाने की शुरुआत रामानुजगंज जिले से की थी और जिन्होंने अहिंसक व्यवस्था परिवर्तन का नारा दिया था। आज उनमें से कई लोग जीवित नहीं हैं, लेकिन आज उन्हें अवश्य इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि नक्सली मुक्त भारत बनाने में उनके परिश्रम का बहुत बड़ा योगदान रहा है। आज भी हम लोग लगातार अहिंसक तरीके से पूरी दुनिया में व्यवस्था परिवर्तन की योजना बना रहे हैं और हमारा कार्य निरंतर जारी है।

वर्तमान दुनिया एक दूसरे से कंपटीशन कर रही है। ऐसे कंपटीशन में पिछले कुछ वर्षों से भारत बहुत तेजी से आगे निकल रहा है। भारत की अर्थव्यवस्था भी अब मजबूत स्थिति में है और हम दुनिया की चौथी अर्थव्यवस्था बनने जा रहे हैं। जल्दी ही भारत तीसरे स्थान पर भी आ सकता है। हथियारों के मामले में भी भारत बहुत मजबूत स्थिति में है। पाकिस्तान में वर्तमान टकराव के समय भारत ने दुनिया को दिखा दिया कि हम हथियारों के मामले में भी आत्मनिर्भर होते जा रहे हैं। भारत में जिस तरह नक्सलवाद और आतंकवाद पर नियंत्रण किया, वह भी दुनिया के लिए एक सबक बनता जा रहा है। इसी तरह आपने देखा होगा कि भारत ने किस तरह बांग्लादेशी और रोहिंग्या मुसलमानों को निकालना शुरू कर दिया। पिछले कुछ महीनों में ऐसे कई हजार मुसलमान भारत से निकाले जा चुके हैं जो छुपकर भारत आते रहे हैं। पिछले कुछ दिनों से यह भी दिख रहा है कि न्यायपालिका की उद्दंडता पर भी भारत सरकार नजर रख रही है। भारत सरकार ने इस बात की शुरुआत कर दी है कि न्यायपालिका को भी संविधान की सीमाओं का पालन करना ही होगा। न्यायपालिका अपने को सर्वोच्च घोषित नहीं कर सकती। इस मामले में भारत ने तकनीक का जितना सहारा लिया, वह भी भारत की एक सफलता ही मानी जाएगी क्योंकि तकनीक ही वह आधार है जो भारत को दुनिया से कमजोर बना रही थी। तकनीक के मामले में भी भारत बहुत तेज गति से आगे बढ़ रहा है। इस तरह मैं इस बात की घोषणा कर सकता हूं कि भारत वर्तमान समय में पूरी दुनिया में सबसे अधिक तेज गति से हर मामले में प्रगति कर रहा है। मैं अपने देश की वर्तमान राजनीतिक व्यवस्था को इसके लिए धन्यवाद देता हूं।

ज़ूम चर्चा कार्यक्रम का सारांश

1 सत्यपाल मलिक भारत की आम जनता के लिए एक जाना-पहचाना नाम है। एक दबंग राजनेता, बड़े-बड़े बोलने वाले सांसद और नदी में मुंह डुबाकर मछली खाने का प्रयास करने वाले सतपाल मलिक कश्मीर के गवर्नर रह चुके हैं। उस कार्यकाल में उन्होंने ईमानदारी से भ्रष्टाचार करने का एक नया रिकॉर्ड बनाया। जब उन्होंने 300 करोड़ रुपए ठुकराने की बात कही थी, तभी यह बात संदेह में आ गई थी कि सतपाल मलिक जैसा व्यक्ति इतनी बड़ी रकम के लिए इंकार नहीं कर सकता। मैं इस संबंध में उस समय एक लेख भी लिखा था। अब यह बात प्रमाणित हो गई है कि उन्होंने जो 300 करोड़ रुपए की घूस इंकार की थी, उसमें एक राज छिपा हुआ था कि उन्होंने इसके बदले में दूसरे समूह से कुछ कम रकम पर ही समझौता कर लिया था और सतपाल जी अपनी बात पर कायम रहे और उन्होंने 300 करोड़ रुपए ठुकरा दिया। सतपाल मलिक पर जब से यह मामला सिद्ध हुआ है और उन्हें अब अभियोजन के कटघरे में खड़ा होना होगा, तो अब सतपाल मलिक गंभीर रूप से बीमार हो गए हैं। जिस समय बड़ी-बड़ी बातें कर रहे थे, उस समय तो अपने को प्रधानमंत्री से नीचे मानने को तैयार ही नहीं थे, अब जरा सा कोर्ट का मामला पहुंचते ही अपनी बीमारी का फोटो छपवा रहे हैं। विचित्र दबंग गई है। अरे, हिम्मत है और न्यायालय में खड़े होकर अपनी ईमानदारी का सबूत पेश करो, अन्यथा इतनी बड़ी-बड़ी बातें करने की क्या जरूरत थी? पूरी तरह ईमानदारी का नकाब लगाकर भ्रष्टाचार करने वाले सतपाल मलिक आज आम जनता से स्वस्थ होने की कामना कर रहे हैं। आपने जो नदी में डूबकर मछलियां खाई हैं, अब वह मछली फंस गई है और अब तो ऑपरेशन ही करना पड़ेगा, यही बात दिखती है।

2 लालू प्रसाद यादव को वर्तमान भारत का सबसे अधिक चालाक नेता माना जाता है। लालू यादव सरीखा नाटकबाज नेता वर्तमान भारत में नहीं है। किस सफाई से इस नाटकबाज ने अपने बेटे को नैतिकता के आधार पर पार्टी से निकाल दिया। लालू प्रसाद के मुंह से नैतिकता की दुहाई सुनकर वास्तव में नैतिकता का अपमान महसूस होता है। आप विचार करिए कि तेज प्रताप यादव में किसी भी प्रकार की सामाजिक या राजनीतिक योग्यता नहीं थी, यह बात बचपन से लालू जानते थे और यही समझकर लालू ने तेज प्रताप की जगह अपने छोटे बेटे तेजस्वी को आगे बढ़ाना शुरू किया। यह उनके पारिवारिक मामला था, लेकिन किस नैतिकता के आधार पर लालू प्रसाद ने तेज प्रताप यादव को बिहार का एक जिम्मेदार मंत्री बना दिया। बिहार जैसे प्रदेश पर अपने खानदान के अपने बेटे को जिस बेशर्मी से लालू प्रसाद ने थोप दिया, उसमें लालू प्रसाद की कितनी नैतिकता थी और कितना स्वार्थ। आज लालू जी नैतिकता की बात कर रहे हैं। वह नैतिकता उस समय कहां चली गई थी जब रेलवे मंत्री रहते हुए यही लालू खुलेआम भ्रष्टाचार कर रहे थे? लालू की नैतिकता कहां चली गई थी जब इसी लालू यादव ने रेल मंत्री रहते हुए कार सेवकों की हत्या को दुर्घटना सिद्ध करने की कोशिश की थी? लालू की नैतिकता कहां चली गई थी जब लालू यादव ने भ्रष्टाचार के आधार पर सजा भोगी? आज यह नाटकबाज नैतिकता की बात कर रहा है। नैतिकता का उत्तर तेज प्रताप को नहीं, लालू प्रसाद को देना चाहिए। तेज प्रताप ने जो गलतियां की हैं, वह शारीरिक भूल थी, चालाकी और धूर्तता नहीं। लालू प्रसाद ने जो गलतियां की हैं, वह धूर्तता है। कल जिस तरह रोते हुए तेजस्वी यादव टीवी पर दिख रहे थे, उससे यह सिद्ध हुआ कि तेजस्वी वास्तव में लालू का ही विस्तार है और पूरे समाज के साथ धोखा है। और मैं स्पष्ट कर दूं कि मूर्खता की तुलना में धूर्तता समाज के लिए अधिक घातक होती है।3 पिछले दिनों मैंने लालू यादव पर एक पोस्ट लिखी थी। कुछ यादव लोगों ने यादव होने के नाम पर लालू के पक्ष में अनेक बातें उठाईं। मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि चारा घोटाले में सारा माल मलाई खा गए लालू यादव और जो लोग बेचारे जेल में सड़ रहे हैं, वह गैर यादव हैं, उनमें आदिवासी हैं, दलित हैं, अन्य जातियों के लोग हैं। यदि इस गलती के लिए लालू यादव माफी नहीं मांगते, तो पूरा समाज एकजुट हो जाएगा। अब हम लालू और उसके खानदान को इस बात की छूट नहीं देंगे कि वे पिछड़ों के नाम पर दलित और आदिवासियों के साथ इस तरह अत्याचार करें। इसलिए हम लालू प्रसाद से यह निवेदन करना चाहते हैं कि लालू प्रसाद इस जातिवाद के नाम पर समाज के टुकड़े करना बंद करें। आज भी जो दलित आदिवासी अफसर जेल में बंद हैं, उन सबके लिए लालू को कुछ न कुछ करना ही होगा, क्योंकि अब पूरा समाज एकजुट हो रहा है।

4 यदि कोई व्यक्ति स्वार्थ में अंधा हो जाए, तो वह कितना भी बड़ा आरोप लगा सकता है और यदि वह व्यक्ति महिला हो, तो उसकी शक्ति तो असीम हो जाती है। आज यह बात सिद्ध हो गई जब बृजभूषण शरण सिंह को न्यायालय से राहत मिली। यह बात पहले से पता थी कि बृजभूषण सिंह कुछ मामलों में बदनाम रहे हैं और उनकी इस बदनामी का विनेश फोगाट ने लाभ उठाने के लिए तरह-तरह के नाटक किए। इन नाटकों के परिणामस्वरूप विनेश फोगाट विधायक बनने में तो सफल हो गई, लेकिन आप यह देख सकते हैं कि इस प्रकार के नाटकों में उसके सम्मान की क्या दुर्गति हुई है। विनेश फोगाट का एक खिलाड़ी के रूप में देशभर में और दुनिया भर में जो सम्मान था, आज वह विधायक के रूप में उसे नहीं मिल सकता है। उसने इस नाटक में क्या-क्या प्रपंच नहीं किए, यह सारी दुनिया ने देखा है। सड़कों पर बैठ जाना, गंगा में जाकर कुछ बहाने का नाटक करना, लंबे-लंबे आंसू बहाना, पुलिस वालों पर आरोप लगाना और पता नहीं उसने कितने नाटक किए। अंत में बृजभूषण सिंह को इतने वर्ष बाद राहत मिली है। मैं इस मामले में देश को सावधान करना चाहता हूं कि स्वार्थ में अंधी महिलाओं से दूरी बनाकर रखनी चाहिए। इस राष्ट्रव्यापी नाटक से उन सब लोगों की भी किरकिरी हुई है जो जंतर मंतर पर विनेश फोगाट के पक्ष में राजनीतिक ड्रामा कर रहे थे। आज वे नाटकबाज विपक्षी नेता भी मुंह छुपाए हुए घूम रहे हैं।

5 वैसे तो मैं पहले से ही भीमराव अंबेडकर को एक गलत व्यक्ति मानता था क्योंकि अंबेडकर ने कभी स्वतंत्रता संग्राम में कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहयोग नहीं किया था। यहां तक कि जब 1942 में गांधी और कांग्रेस पार्टी ने अंग्रेजों से भारत छोड़ो और पूरे देश में आम जनता अंग्रेजों के खिलाफ एकजुट हो रही थी, तब भी अंबेडकर आम जनता के साथ नहीं थे। लेकिन मुझे यह नहीं मालूम था कि इस कालखंड में अंबेडकर गुप्त रूप से अंग्रेजों के साथ मिलकर कुछ अलग सौदेबाजी कर रहे थे। लेकिन पहली बार यह बात खुलकर सामने आई है कि अंबेडकर ने सन 1946 में अंग्रेज सरकार को एक पत्र लिखा था, जिसमें यह लिखा गया था कि भारत के दलितों ने हमेशा से अंग्रेज सरकार की मदद की है। दलितों ने हर लड़ाई में अंग्रेज सरकार का साथ दिया है, इसलिए अंग्रेज सरकार को चाहिए कि वह वर्तमान समय में अपनी सेना में भी दलितों को अधिक शामिल करें तथा अन्य महत्वपूर्ण स्थानों पर भी दलितों को विश्वसनीय मानकर उन्हें स्थान दिया जाए। आप सबको पता होगा कि भारत का संविधान 1946 में बनना शुरू हो चुका था। इस संविधान निर्माण में भी अंबेडकर की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका थी। दूसरी ओर, अंबेडकर ऐसे संवेदनशील समय में अंग्रेज सरकार के प्रति वफादारी सिद्ध कर रहे थे। इससे अंबेडकर की भूमिका साफ दिखाई देती है। मैं मानता हूं कि भारत की वर्तमान स्थिति में तो इस प्रकार की चर्चा का विशेष औचित्य नहीं है, लेकिन जो अंबेडकरवादी वर्तमान समय में भी हमारी पूरी समाज व्यवस्था को ब्लैकमेल करना चाहते हैं, उन्हें यह आइना दिखाना भी उचित प्रतीत होता है।

गतांक से आगे ...

जीवन पथ

(अपने अब तक प्रो. श्रीवास्तव और उनके शिष्यों विवेक सिमी आदि के बीच अनेक सामाजिक मुद्दों पर चर्चा को पढ़ा। अब भाग 3 में विवेक के व्यवस्था के दर्शन को देखेंगे)

.. सदैव से ही जब से व्यक्ति ने व्यवस्था शब्द के प्रभाव को स्वीकार किया है और समाज में व्यवस्था की स्थापना के लिए राजनीति को माध्यम बनाया है, तभी से समाज तथा राजनीति के बीच समाज के अधिकारों की सीमा तय करने का द्वन्द चलता रहा है। राजनीति स्वयं को समाज में व्यवस्था की स्थापना का माध्यम न मानकर इसकी स्थापना का कारण मानती रही है। मेरे विचार से समाज में अधिकारों के सीमांकन का यह स्वरूप ठीक नहीं है। लेकिन प्रश्न उठता है कि यदि समाज में व्यवस्था की स्थापना हेतु राजनीति का स्वरूप स्वतन्त्र नहीं होगा तो व्यवस्था की स्थापना किस प्रकार हो सकेगी? मूलतः यह राजनीतिक व्यवस्था के दर्शन की विवेचना का विषय है, यह व्यवस्था के यथार्थप्रज्ञ स्वरूप को आकृति देनें वाले उसके माध्यम की वास्तविकता का समाज से परिचय कराने का विषय भी है।वास्तव में, समाज को राजनीति के रूढ स्वभाव का परित्याग कर राजनीतिक व्यवस्था के सन्दर्भ में व्यवस्था का दर्शन स्वीकार करना चाहिए। क्योंकि समाज में राजनीति के माध्यम से हम जो व्यवस्था करते आए हैं उसमें व्यवस्था का स्वभाव आत्मनिष्ठ (स्वकेन्द्रित) रहा है जबकि व्यवस्था के विषय में समाज के परिप्रेक्ष्य को समझते हुए इसका स्वभाव वस्तुनिष्ठ (समाज केन्द्रित) होना चाहिए। शक्ति के केन्द्रीयकरण को अपनी उत्पत्ति का कारण व आदर्श के रूप में स्वीकार करने वाली राजनीति ने अपने स्वभाव को कभी-भी वस्तुनिष्ठ प्रदर्शित नहीं किया है। इसका यह आत्मनिष्ठ (तदर्थ में स्वकेन्द्रित) स्वभाव ही युगो से जीवन की मूल स्वतन्त्रता को रौंद रहा है और यह निश्चित है कि आने वाले समय में भी इसका यह स्वभाव समाज में सन्तुलित व्यवस्था की स्थापना का माध्यम नहीं बन सकेगा।

मेरे विचार से व्यवस्था (राज्य) शब्द के चरित्र का अभिव्यक्त सार यह है कि समाज अपने परिवेश में इसे इसलिए स्थापित करता है कि उसके जीवन चक्र में सुगमता बनी रहे, वह प्रबन्धित रहे नियन्त्रित नहीं। राजनीति को अपने प्रबन्ध के अधिकार सोंपने के पीछे समाज की केवल यही मंशा रही है। क्या राज्य की स्थापना की कल्पना मूल रूप से समाज की इसी सोच के विस्तार का परिणाम नहीं है? मूलतः राज्य का समाज से शक्ति संग्रह का सिद्धान्त इसी विचार से उत्पन्न होता है। ....लेकिन अधिकार प्राप्त कर लेने के बाद राजनीतिक व्यवस्था ने समाज की इस आकांक्षा का सदैव ही दलन किया है। वस्तुतः राजनीति कभी-भी अपने इस उच्छृंखल स्वभाव को नहीं नकार पायी कि समाज की गुलामी में ही उसका अस्तित्व सुरक्षित है। राजनीति अपनी इसी महत्वाकांक्षा की खातिर समाज पर व्यवस्था के नाम से नियन्त्रण करने के लिए विभिन्न प्रकार के प्रयास करती रही है। आधुनिक समाज में राजनीति द्वारा स्थापित लोकतन्त्र का लोकनियुक्त स्वरूप भी समाज को इसी षडयन्त्र के तहत अपने नियन्त्रण में रखने का प्रयास है। हमे जीवन की मूल स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए समाज की व्यवस्था को राजनीति के इस षडयन्त्र से मुक्त करना होगा।

इस स्थिति में यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि व्यवस्था का वह कैसा स्वरूप होगा जो समाज को युगों से चली आ रही राजनीतिक परतन्त्रता से मुक्त कर देगा! ....मित्रों, वह व्यवस्था लोकतन्त्र से इतर कुछ नहीं होगी। केवल उसकी स्थापना के सैद्धान्तिक ढाँचे में इतना अन्तर होगा कि वह व्यवस्था लोकनियुक्त के स्थान पर लोकनियन्त्रित होगी। ऐसा होने पर शक्ति का केन्द्रीयकरण नहीं होगा और न फिर व्यवस्था-तन्त्र से जुड़ने वाले लोग राजनीतिक शक्ति का निजी स्वार्थों में प्रयोग कर पाऐगें। तब लोगों के मन में आत्म-केन्द्रित राजनीतिक विचार भाव कमजोर होगा और सामाजिक विचार भाव मजबूत होगा। इसी विचार के साथ व्यवस्था (राज्य) के लोक नियन्त्रित स्वरूप को और स्पष्ट करने के लिए व्यवस्था तथा नियन्त्रण, इन दो शब्दों के व्यावहारिक स्वभाव पर भी पारदर्शी चिन्तन होना चाहिए। राजनीति सदैव से ही समाज पर व्यवस्था के नाम से नियन्त्रण का प्रयास करती रही है। मेरे विचार से व्यवस्था की स्थापना की यह प्रक्रिया गलत है। इन दोनों शब्दों के क्रियान्वयन का ठीक ढंग यह है कि राजनीति, समाज में व्यवस्था की स्थापना का माध्यम बनें और समाज, राजनीति पर नियन्त्रण रखे। समाज में राजनीति को इतनी स्वतन्त्रता कभी नहीं मिलनी चाहिए कि वह निरंकुशता को अपना स्वाभाविक अधिकार मानने लगे। समाज को अपने अस्तित्व का अर्थ समझना होगा कि वह ही शक्ति का मूल स्रोत है, व्यवस्था का कारक है।

.... चिन्तन मग्न विवेक किसी आहट से अपने चिन्तन से उचाट होता है तो सामने माँ को पाता है। वह कहती हैं- किस सोच में डूबा हुआ है विवेक?

क्रमशः ...